❁ श्री विश्वनाथैकशरणम् ❁



" अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ,, ऋ० वे०

॥ उदासीन पन्थ समीक्षा ॥

और

❁श्रौतमुनिचरितामृत-ध्वान्तादिवाकर❁

प्रथम भाग

——:०:——

संपादिक—

श्री १०८ स्वामी ब्रह्मनिष्ठ-आत्मवरिष्ठ-घनाकीर्तन धौरेय

अवधूत जी 'महाराज, (शारदावेश चुञ्चुपाचार्य्य)

सहायक—

श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द पर्वत (वेदवित्)

श्री मण्डलेश्वर १०८ महाराज (काशी)

प्रकाशिक—

"स्वामी नारायण गिरि,,

संशोधक—पं० रविचन्द्र शर्म्मा मठ-पदी,

(जि० जालन्धर)

प्राप्ते कलियुगे घोरे, सुदासाः पुण्यवर्जिताः ।
दुराचाररताः सर्वे सर्वधर्म्मपराङ्मुखाः ॥ ब्र० पु० उ० खं०
(इति वै चूकबोधनम्)

प्रथम सँस्करण १०००

स्टैंडर्ड प्रेस, जालन्धर शहर।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

❀ श्री विश्वनाथैकशरणम् ❀



" अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ,, ऋ० वे०

॥ उदासीन पन्थ समीक्षा ॥
और
❀श्रौतमुनिचरितामृत-ध्वान्तादिवाकर❀
प्रथम भाग

——:०:——

संपादिक—
श्री १०८ स्वामी ब्रह्मनिष्ठ-आत्मवरिष्ठ-घनाकीर्तन धौरेय
अवधूत जी 'महाराज, (शारदावेश चुञ्चुपाचार्य्य)

सहायक—
श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द पर्वत (वेदवित्)
श्री मण्डलेश्वर १०८ महाराज (काशी)

प्रकाशिक—
"स्वामी नारायण गिरि,,

संशोधक—पं० सखिचन्द्र शर्म्मा मठ-पट्टी,
(ज़ि० जालन्धर)

प्राप्ते कलियुगे घोरे, सुदासाः पुण्यवर्जिताः ।
दुराचाररताः सर्वे सर्वधर्म्मपराङ्मुखाः ॥ ब्र० पु० उ० खं०
(इति वै चूकबोधनम्)

प्रथम सँस्करण १०००

स्टैंडर्ड प्रेस जालन्धर शहर।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

॥ शुद्धि पत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	८	उदसीनों	उदासीनों
,,	११	महत्व	महत्त्व
३	२५	आगम	अगम
४	३	नामति	नामाति
५	६	त्र्यम्बका	त्र्यम्बक
८	५	मद्यमा	मद्यपा
१२	११	विशेस्य	विशेष्य
१३	१९	माना	मानना
,,	२०	घर	घट
,,	२१	काशी	कासी
१४	८	मनाना	मानना
१४	३२	उदासियों	उदासियों
१५	४	नरश्चा	नरश्छा
,,	६	भिर्वली	भिर्वलै
,,	१४	आद्धा	आज्ञा
,,	२३	कश्चह्मा	कश्छद्मा
,,	३४	पहि	परि
१६	१८	यश्च	याश्च
,,	२२	रथें	रथं
,,	२६	पते	यते
१७	१५	शल्यया	शलभया
,,	२७	शलभया	शह्मया
१८	२३	ऐन	येन
२२	६	श्रीचम्प	श्रीचन्द
,,	२४	सश्व	अश्व
२३	२६	चौर्य्य	चौरकार्य्य
२४	२२	सिद्धः	सिद्धिः
२५	१३	योगद्	योगाद्
,,	,,	न्यास	न्याय
,,	१७	पूता	पूताकी
२६	३	जान	मान

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१८	कश्च	कञ्च
२७	१३	संप्त	संप्र
,,	१४	आषीनु०	आर्षानु०
,,	१५	प्रसाह	प्रसाद
,,	१८	लिखा	लिखा था
३०	१०, १३	आत्मा	आत्म
३१	१०	को	के
,,	१३	प्राप्तवान	प्राप्तवानी
३७	१०	द्दस	इस
३८	२०	उपासी	उदासी
,,	२२	इतिहास	इतिहास के
३९	३	क्कोंकि	क्योंकि
४०	३०	वारस्य	वानरस्य
,,	३१	यद्वा	यद्वा तद्वा
४१	१२	रसे	रहे
,,	३४	अपमित्र	अपवित्र
४७	२	उडासी	उदासी
,,	२५	खावेगो	खावेंगे
,,	२६	वेलाने	वोलाने
४९	२२	कशमीरी	कश्मीर
५१	३	कुरुछ	कुच्छ
५३	१३	बवखण्डी	बनखण्डी
५५	११	पुद्धो	युद्धो
६०	१	भी	भी नाम
६१	२१	ज्ञेता	जेता
६३	११	ब्याता	ख्याता
६८	२५	जगानां	गजानां
७०	२४	या	पा० नि०
७१	२६	सदितु	सीदतु
७२	६	पतयो	यतयो
,,	१३	क्यों	कर्या
,,	२३	पतिभयो	यतिभयो
७४	२३	पति	यति

❀ उदासीन पन्थ समीक्षा ❀

और

श्रौतमुनि चरितामृत ध्वान्त दिवाकर।

इस असार संसार में कतिपयविद्याश्रमविकल व्यक्तियों के निबन्धों ने धर्म के लिये अन्तक का रूप धारण कर रखा है, जोकि मनमानी शास्त्र विरुद्ध बुद्धि के मित्रों ने कलिकाल को शीघ्रता से प्रवेशार्थ सहानुभूति प्रगट की हैं। हे ईश्वर! इन कलियुगि साधुयों को कब सुबुद्धि प्रदान करोगे ? क्या ये व्यक्तियां भी कभी शास्त्र के मर्म को प्राप्त करेंगी ? मुझे आशा है कि हे प्रभो! आप भी अब इन से डरते हो क्या आप ही शास्त्र-विरुद्ध माला के दाने बनाते हो ? क्या चकाचौंध में पड़कर धर्म का ही गला काटना हैं ? मुझे आशा है कि श्रीचरण भी इस जन्म मैं इन को सुबुद्धि प्रदान नहीं करेंगे, क्योंकि आप पर भी तो इन प्रज्ञा हीनों ने नितान्त घृणित दृष्टि दर्शाई है। क्या आप इन असुरों को भी अपनाये बैठे हो ? मुझे तो आशा है कि आप किसी की लेखनी को अवश्य अपने करकमलों की शक्ति प्रदान करोगे। क्या पन्थों की माता (अविद्या) रूपी कुत्तिया अभी पन्थ रूपी श्वानों को जन्म देती ही रहेगी ? क्या आप की शक्ति प्रदान द्वारा विजयी पण्डितों की लेखनी मतमतान्तर रूपी कुत्तिया के शिशुओं को क्या तूलसम नष्ट न करेगी ? दूर न जावो, देखो! एक अन्ध व्यक्ति गङ्गेश्वरानन्द नामी ने समस्त सनातन धर्म पर बड़ो क्रूरदृष्टि निपातन द्वारा अक्षेप किये हैं, जिन्होंने एक महाभ्रष्ट श्रौतमुनि चरितामृत नामक पुस्तक लिखा है, जिस में. सर्वनाथ वा वैष्णाव सम्प्रदायों पर भी निठुर अक्षेप किये हैं। परं मुझे (क्रुद्धोऽपिकुशलं वदेत्) इस मनु की उक्तिसें विलम्ब करना पड़ा परं यत्न भी उपादेय है क्योंकि (नहिसुप्तस्यसिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः) परं गंगेश्वरानन्द ने तो (विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्)—इस के अनुसार पुस्तक रूपी शाखा मृग अपने गले का हार तैयार कर लिया है। अस्तु (यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी) इस भारत निरुक्ति को भी सार्थक करना ही था, परं इस अन्ध व्यक्ति के अनुयायियों को स्मरण रहे कि (अन्धस्यैवाऽन्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे) इस के अनुसार न चलें यद्यपि उदासीन पन्थाईयों ने नोटिसवाजी की शरारत से संन्यासियों के प्रति खूब गाली गिलोज़ की वृष्टि की थी सो उसका फल उनको अच्छा सुथरा मिला था सां० ६० में परं स्मरण होगा कि कुम्भकरण की निद्रा भङ्ग से वानरों के समान उदासीपन्थाई खूब चर्वण हुये थे। सो अब

इन की शास्त्रानभिज्ञाता का स्वरूप सर्व जनता के सामने रखता हूँ जोकि विवेक प्रिय महाशययों को विदितचर हो जाये, इसका उत्तर संक्षिप्त है । इस समय कलिकाल के वातावरण ने शास्त्र विमुख नरपुञ्जों की गुञ्जापुञ्ज गतपावकानुमितिकल्पबुद्धि को खूब छिन्न नासिका बनाया है । परं इन बुद्धिहीन रजत नरों का लेख भी खपुष्प बन्ध्यासुतादि शब्दों की बराबरी खूब करता है । क्योंकि यदि ऐसे लेख संसार में न होते तो व्रीडाको भी संसार से विदा होना पड़ता, अस्तु अवध्यान दे कर पढ़ो इन उदसीनों की इतिहासता दर्शाते हैं । जिस से तीसमारखाँ सुतरां सिद्ध हैं । इस पुस्तक के लिखने में मक्खनसर निवासी स्वा० गंगादास वा विरयामदास ने पुस्तकें देकर बड़ी ही सहानुभूति प्रकट की है, तथा धूनीदास घुंघरूंयों वाले ने भी दो पुस्तकें देकर खूब पुस्तक का महत्व रसीला बनाया, क्योंकि सर्व उदासी छोकरे नहीं हैं इस समय भाषा पढ़े हुये बृद्ध सज्जन भी कम नहीं जोकि आज कल के पण्डित उन्हों के पदपरागकल्प भी नहीं हैं, क्योंकि अपने इष्ट को छोड़ना महा अन्धता का काम है । वे निर्वाण सज्जन अब भी (पाये पद निर्वाना सन्त सुजाना) गुरुग्रन्थ साहिब की इस पंक्ति को सार्थक बनाने वाले हैं, केवल बुद्धि के रिपु नहीं । नित्यं प्रतिस्व कपोल कल्पित बातों से ब्रह्मा भी भय करता है, देखो इन उदासी पन्थाईयों ने तनक भी सत्य का प्रयोग नहीं किया इन नाम चक्रधारी उदासीयों ने अपना इष्ट भी छोड़ दिया है, दश गुरुओं को छोड़ा है, इससे इनका नाम त्यक्त दश गुरु भी नियतहुआ इस पुस्तक की सहायता करने वालों को विशेष कुछ न कहकर मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जोकि केवल दो मास में ही तैयार हुई ।

❀ इति ❀

विशेष सूचना ।

यदि कोई महाशय इस का उत्तर लिखे तो सप्रमाणक सयुक्तिक ही निबन्ध लिखे अन्यथा परितोषिक नहीं मिलेगा और विद्वान् पुरुष उस की निन्दा भी करेंगे इन सब बातों को जानकर प्रवृत्त होना चाहिये केवल नामार्थ ही प्रयत्न करना मूर्खता का काम है यदि सप्रमाण लिखा तो हम उन्हों के विशेश श्रमों को सादर दृष्टि से निरीक्षण करेंगे । लेख सभ्यतापूर्ण होना चाहिये अन्यथा आदर के परिवर्तन में निरादर होगा वाममत का तांत्रिक ग्रन्थ कोई प्रमाण नहीं होगा हां दक्षिण मार्ग के तंत्र सर्वमान्य होंगे, परं आप उदासीओं को तो भाषा निबन्धों में ननुनच किन्तु किम्वा नहीं करना होगा, क्योंकि आप का पन्थ तो भाषा पढ़े

नरों का अनुभव है। जोकि काकतालीयन्याय से कुच्छ अच्छा भी है। परं वह भी हेय है, क्योंकि भाषानिबन्धों के कर्त्ता पूर्ण संस्कृत के विद्वान् नहीं होते, अतएव भाषा निबन्धों के ही इस में अधिक प्रमाण दिये गये हैं। संस्कृत के बहुत कम दिये हैं, "इस श्रौतमुनिध्वान्त" के बनाने वाला भारत वर्ष का नाशक गङ्गादास उदासी साधु है यदि ऐसे विवेक विकलों का तुण्ड मर्दन न किया जायेगा तो कुल देश की हानि होगी। सप्रमाणिका युक्ति उपादेय होगी प्रमाणविकला नहीं, आप के निबन्ध आपको समस्त प्रमाण मानने होंगे। वक्ष्यमाण प्रकरण में धर्म्म शब्द गुणों परक है। जैसे कि "उदासी शब्द धर्म्म परक है" तो इसका अर्थ होगा कि "उदासी शब्द गुण वा उपसर्जन या अप्रधान यद्वा अङ्ग परक है, सो स्वतन्त्र उपादेय नहीं है। केवल गुणा के पादानुजीवी है। वास्तव तो उदासी शब्द का अर्थ अधर्म्म है वह वारंवार दर्शाया है।

श्रीचन्द तो यवन पक्का था क्योंकि मात्रेमें लिखा है कि कुजादर सलाम, (सो सलामेन यवनायते) अवनमोब्रह्मणे, चला है उदासीन शब्द कोकरामलक कल्प सर्व शास्त्र निष्णातों ने धर्म्म परक माना है, अतः उदासीनशब्द विशेषण है सो विशेषण सर्वथा उपसर्जन नियतचर है, अतएव ग्रन्थकर्ता ने भूमिका के पृ० २२ में उदासीन शब्द को धर्म मान लिया है अतः उदासीन शब्द का प्रयोग तो धर्म परक है उदासी पन्थ का बोधक नहीं यदि पन्थ का बोधक होता तो संन्यासी शब्दवत् कहीं इस का प्रयोग भी होता अत विशेषण वाचक पद का विशेष्य परक करना शब्द का दोष नहीं है किन्तु अर्थकर्ता की बुद्धि का परचायक है पद्मराग की कीमत गोपन्याय सें। अस्तु अब उदासी शास्त्रशून्य नर पन्थ सें चिड़ते हैं और पन्थाई कहने वाले को गालि प्रदान करते हैं। देखो मात्रा (मन्त्र) श्रीचन्द का (गुरु अवनाशी खेल रचाया, आगम निगम का पन्थ वताया) क्या इस ते स्वयं अपने को अनाश्रमी पन्थाई लिखने वाले श्रीचन्द को गालियों की वृष्टि सें अन्तिम स्नान करवायोगे ? धन्य है (उलटा चोर सर्व को डाटे) तुम्हारे गुरु तो पन्थाई बनना चाहें, परं अन्धे शिष्य अब श्रीचन्द से भी तुण्ड छिपाते हैं। क्या तुम पन्थाई के चेले पन्थाई नहीं तो गिरगिट हों ! श्रौ० पृ० २३ मैं (३) श्रीचन्द को गुरु नानक का पुत्र होने में भी संदेह लिख मारा, क्या पुत्र का पिता का न बताना कुच्छ गौरव है, परं स्मरण रहे ऐसी दशा में पुत्र के लिये किन शब्दों का प्रयोग होता है। (४) श्रौ० पृ० २४ मैं गङ्गादास ने श्रीचन्द का गुरु अवनाशी लिखा है। सो गलत है, क्योंकि श्रीचन्द का

गुरु तो भगवान् गिरि था, क्योंकि श्रीचन्द के मात्रा (मन्त्र) मैं (गुरु अवनाशी सूक्ष्मवेद निर्वाण विद्या अपारभेद) इस मैं (आत्मनाम गुरोर्नाम नामति कृपणस्य च श्रेयस्कामा न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्य कलत्रयोः) के अनुसार श्रीचन्द ने अपने गुरु का निरुपाधिक नाम नहीं बताया किन्तु अवनाशी नाम सें स्मरण करा है क्योंकि भक्त भगवान् गिरि जी अवनाशी विशेषण का निरुपाधिक नाम है बालुहसन मात्रा पृ० ३२ में (गुरु अवनाशी भक्तहितारु. अपनोनामु भक्तकरुधारु) यांते भक्त भगवान्-गिरि का ही दूसरा नाम अवनाशी गिरि था (रामरत्न निजग्रह त्यजनामु, लेत गिरि भगवान् सुकामु) फुलशाह कृत विवेक चर्पट के पृ० ४२ में और इस के गुरु का नाम त्र्यम्बक गिरि था, यह गुरुदास ने लिखा है (त्र्यम्बक गिरि का शिष्य अवनाशी यांका अन्त नाम गिरिगाशी) और जिस ने विशेष देखना हो वह उदासीन मञ्जरीध्वान्त दिवाकर के पृ० ४६ से ६५ पर्य्यन्त देखलें । यांते भक्त भगवान् को श्रीचन्द का शिष्य लिखने में हरनामदास किसी व्यक्ति की कुचेष्टा निर्मूलक है । यांते उदासीन मत दर्पण) पुस्तक सर्वथा बाललीला है । इस हरनामदास ने तो केवल (हर) चोरी (नाम) बदनाम अर्थात् चोरी नामदास स्वनाम का परिचय दिया है । क्योंकि गुरु को चेला लिखना किसी विद्वान् का काम तो नहीं है, परं इस दासान्त का काम अवश्य है ।

उदासियों के भेद ।

वन्नों पन्थी, शाक्तिक, वामी, स्त्री पन्थी, शाही पन्थी, फकीर पन्थी, रब्बा पन्थी, तांत्रिक, सुथरे शाही, गुरुजमार पन्थी, विलाव पन्थी, यवनशाही, रजक शाही, गधेज पन्थी, मुद्रा पन्थी, सैली पन्थी, टोपी पन्थी, इत्यादिक इनके बहुत भेद हैं कहां पर्य्यन्त लिखें, क्योंकि त्यक्त दश गुरु तथा जातपात तोड़ पन्थी, अलीक पन्थी, वीर पन्थी, सत्यकरतारिये पन्थी, नाम पन्थी, नानक पन्थी, नानक शाही, चन्द्र पन्थी, चन्द्रीय पन्थी, भीरु पन्थी, मानोपाली पन्थी, उग्र पन्थी, पक्षी शिष्य, मियां पन्थी, मसन्द पन्थी, खवास पन्थी, नौकर पन्थी, चपरासी पन्थी, गुलाम शाही इतने भेद तो उदासियों के प्रधान हैं अन्य भेद गुणभूत होने से वा ग्रन्थवृद्धि के भय से नही लिखे । परं अन्यत्र तो विश्वेश्वरीय भाषादिक पुस्तकों मैं हमने विस्तार सें दर्शाये हैं । इस संसार मैं यदि मत भेद वा उद्दण्डता या धूर्तता तथा कलह का अथवा विद्वेषता का या लड़ाई झगड़ों का बीज है, तो केवल—फूलशाह १, बालुहसनखाँ २ वा गोईन्दीन खाँ ३ या अलीमस्तशाह ४ ये चारों यवन ही थे क्योंकि इनके चेले उदासियों ने वैदिक मत सिद्धान्त का निरादर करके अपने गुरु

यवनों का मत चलाया है। बस इन्हों ने भारत को दुराश वा नपुंसक बना दिया है।

१ (वन्नों पन्थी) वन्नों देवी किसी रजकदास नामी तच्च की पुत्री थी, जो तच्च संत सेवी भी था जिसने (तच्चविवेक) नामक पुस्तक भी लिखा था, वह भगवान् गिरि जीका प्रथम शिष्य हुआ था, परं वन्नोंने अवनाशी गिरिके गुरु त्र्यम्बका गिरिसे दीक्षा लीथी, अत: श्रीचन्दकी गुरुभगनी भयी। क्योंकि प्रथम गुरु परीक्षार्थ श्री चन्द को गुरु भगवान् गिरि ने अपनी शिष्या वन्नों के पास भेजा था तब वन्नों से दीक्षित होकर पश्चात् अपने गुरु भगवान् गिरि महाराज से दीक्षा ली थी। इस लिये उदासियों की जन्मदात्री वन्नों देवो थी, जिस से वन्नों पन्थ १, स्त्रीपन्थ २, वामी ३, यवन ४, शाक्तिक ५, तांत्रिक ६, सत्यकरतारिये ७ पन्थ चले थे। यह समाचार धूनिदास उदासी ने (विवेक प्रणाला) के पृ० २२ से ३१ तक लिखा है और (विवेक गुरु) के पृ० २३ में वन्नों को शक्ति का अवतार लिखा है। इस तच्चा ने सिन्धु देश में मांस का और गुज़रात में वाम मत का प्रचार किया था तथा कश्मोर में यवनों को उदासो बनाया था। यातें मुद्रा पन्थ १, सैली पन्थ २, टोपी पन्थ ३ अपने शिष्य फूलशाह और रुकमशाह द्वारा चलाये थे। यह समस्त विषय नूत्नमुण्डमाला के अध्ययन से ज्ञात है। (गुरुज़मार पन्थ) (मुसलम्म निवाज़) के पृ० २३ में श्रीचन्द का आर्शार्त्त होने पर उसके शिष्य गिलाफ शाह ने सीसा देकर हलुये में मारा था। यह ऐसा हज़रत था कि इसने अपना नया पन्थ गुरुज़मार चलाया था, इस समय भो पाञ्चालीय उदासी गुरुज़मार बहुत प्रसिद्ध हैं और अपने मुख मैं भी भिक्षा के समय (भिक्षा यदि कोई न दे तो) लोहे की शलाका मारते हैं औ गुरु मरा गुरु मारा मुख से बोलते हैं। "ना हो बावा श्रीचन्द की जय" के नारे लगाते हैं, यह उदासो चोरी भो कर लेते हैं।

(जातपात तोड़ पन्थ) बालुहसन ने (गुरु सचाई) के पृ० ५१ में लिखा है कि (श्रोचन्द मद्यपा जात न कोय, नारो मांस दोऊ कर सोये) अत: बालुहसन भी तांत्रिक था, उसने जात तोड़ पन्थ चलाया था। इसका शिष्य वसनशाह था उसने वाम पन्थका प्रचार किया था, परं यह लांछनदत्त पर वा स्वामी विद्यारण्य पर किसी परमात्मानन्द नामी वामो उदासी ने अङ्कित किया है। जोकि श्रीचन्द स्वयं मद्यपा तथा अजातिया नारी भक्त था। तो कहो स्त्री पन्थाईयो उदासीयो! अब क्या वन्नों की माला न रटोगे, वन्नों का नाम तो मानो, उदासियों को व्रतीकल्प शोणित पारणा है। क्यों न रटन करें

अन्यथा पन्थवृद्धि नहीं होगी। अतएव नारी वा मांस या शराब खोरी दोष से ही गुरु नानकदास ने निलायक वा अयोग्य समझ कर इन दोनों पुत्रों को गद्दी भी नहीं दी थी। क्या उदासियों ने यह सब कुच्छ नहीं जाना होगा। यद्वा ज्ञात पूर्वक ही भस्म छानते हैं, सच्च पूछो तो यह मर्म उदासियों को स्वसंवेद्य अवश्य होगा, परं कथन करना निर्व्यसन नरों का काम है।

(सुथरे उदासी) सुथरे पन्थ का प्रवर्त्तक बाबा फूलशाह था, उसका शिष्य मस्तशाह था, जिसने रुत्रा पन्थी उदासी बनाये थे जो श्रीचन्द सोहले के पृ० ११ में लिखा है और सिद्धों की गोष्ठी में लिखा है कि नानक देव को गुरु गोरक्षक नाथ ने वर दिया था कि मैं तेरे घर स्वयं जन्म लेकर आपको इच्छा पूर्ण करूंगा। अतएव श्रीचन्द को गोरक्षक नाथ का अवतार कहा है, इस से यह भी ज्ञात होता है कि कुच्छ दिवस पर्य्यन्त उदासी नाथों के भी चेले बनें रहे थे सो अब चिड़ते हैं। खूब सचाई नहीं छिपती। यह भी लिखा है कि श्रीचन्द जन्म के समय दक्षिण कान में १ मुद्रा, शिर पर टोपी, गले में सैलो थी। इस में सैली पन्थ वा मुद्रा पन्थ वा टोपी पन्थ भी कूद पड़े थे। इस लिये वर्त्तमान में सैली वाले उदासी निर्वाण हैं और मुद्रा वा टोपी वाले कुच्छ पढे लिखे उदासी केशवानन्द जैसे हैं॥ इस से ज्ञातहोता है, कि ८ वर्ष तक तो नाथों का मत खूब चलाया, फिर निर्वाण फिरका पैदा कर मुद्रा टोपी का ही सेवन १५ वर्ष तक कराथा॥ सो नाथों की शिष्य कोटि के उदासी अब भी सैली सिर टोपी रखते हैं॥ इस श्रीचन्द की उत्पत्ति से तो पञ्च मकार भी सिद्ध होते हैं। कयोंकि मुद्रा शब्द इस के जन्म में आया है, तो मुद्रा पन्थ क्यों न चलेगा, और मकार पञ्च तो (मद्यं मांसञ्च मीनञ्च मुद्रा मैथुन मेवच-मकारं पञ्चकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम्) इस के अनुसार नारी मद्यपा मांस मुद्रा जिनके साथ पैदा हुये हों वे तो फिर सैली वाले उदासी वामी क्यों नहीं? अतः (अन्तः शाक्ता वहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः- नानारूपधराः कौला विचरन्तिमहीतले) इस में खूब उदासियों का स्वरूप कथन किया है॥ (नोट) ज्ञात होता है कि श्रीचन्द को ऐसा देख कर ही लोगों को उतर देने वास्ते किसी व्यक्ति से बाबा नानक दास ने गोरक्षनाथ का अवतार बता दिया हो, और अपना पिच्छा छुड़ा लिया हो॥ परं हम ने तो इनके भाषा निबन्धो को ही इन के लिये प्रमाण जान कर सन्तोष दिलाना है॥ अब अपना दोष उदासी औरों पर अङ्कित करते हैं, कयोंकि (अन्धे को अन्धेरे में बड़ी दूर की सूझी-यारों को लगी भूक तो तन्दूर

की सूझी) इस आभाणक को सार्थक बनाते हैं ।। परं गोस्वामी तुलसी दास ने क्या अच्छा कहा हैं कि (फूलहि फलहिन वेत, यदपि सुधावरस हि जलद-मूर्ख हृदय न चेत जो गुरू मिलहि-विरञ्चि सम) और चन्द्र भाष्य मैं तो साफ अपने को वामी वनना मांगा है, चन्द्रभाष्य का नाम अर्ध चन्द्रभाष्य भी है ।। (वामं नोऽस्त्वर्य्यमन्वामं- वरूणं शस्यम् वामं ह्यावृणीमहे) ऋ. ६-अ. ३-वर्ग. मं ४= अर्थ—अर्ध- चन्द्रिका भाष्यं—हे अर्य्यमन् तथा हे वरूण अस्माकं वामं=शंस्यम्=प्रशंसनीयं वाम मार्गं ददताम् येन वयमिह युवाभ्यां वामं=पन्थानं याचामहे शमिति देखो इस मंत्र मैं स्वयं श्रीचन्द (चन्द्र) ने वाममार्गी होना द्वितीय जन्म मैं भी देवता द्वय सें मांगा है ।। क्या अव भी तुम अपने भाष्य से वामी नहीं वनोंगे ।।

(अस्य वामस्य पलितस्य) ऋ. २-३-१४-७=इस मंत्र मैं तो चन्द्र ने स्वयं शराब का नाम वाम सिद्ध किया है, यथा-अस्य पलितस्यैव नाम वामस्य वामोऽस्ति-अर्थविशात् विभक्ति परिणामो ज्ञेयः ।। इस सें तो साफ ही चन्द्र ने चन्द्रभाष्य में उदासियों को वामी होना लिख दिया है, पुनः आप क्यों डरते हों जब चन्द्रभाष्य पृ० १०४ पं. २१ मैं वामी वनते हैं तो उदासी चेले कब बच सक्ते हैं ।।

(वाम मदा सवित र्वाम मुश्वो दिवे दिवे वाम मस्मभ्यं सावी :— वामस्य हि क्षयस्य देव भूरे रयाधिया वाम भाजः स्याम) ऋ.-५-१४-१५ अथ चन्द्र भाष्यम हे सवितः- अद्यापि नो वामं (सुरां) ददातु श्वोदिनेऽपि वामं (सुराम्) दातव्या तथा प्रति दिने सैव दातव्या नो हि प्रति दिने सुराहि निष्पाद्य दानीया नः सदनमपि तत्र स्यात् यत्र वामिदेवता निवसन्ति तया बुध्या वयं वाममार्गस्य भाजिनः स्याम इति ।। इस मंत्र के भाष्य मैं तो वन्नों के चलाये मत को वेदों मैं भी सिद्ध करने की कुचेष्टा खूब की है ।। और चन्द्रभाष्यकार ने ऋ. वेदके (अहंरुद्रा) इस सूक्त, २१५ को वन्नों देवी देवताक लिखा है, जैंसे कि पृ. २१५ मैं मं १-८५—पं. १२ मैं अत्र वन्नों नामाभिधेयादेवी व्यनुसन्धेया) क्या अभी उदासी वन्नोपन्थी वा स्त्री सेवी नहीं बनना चाहते क्योंकि गुरुतो उदासीयों का वन्नों पन्थी है और (मधु माद्यतेः, मधुसोमं) निरुक्त ४ अ. ४ खंः इस का अर्थ पृ. २१५ भाष्यचन्द्र में लिखा है कि मधु मद धातु से वनता है जिस का अर्थ खुशी होना है सो (सुरां पीत्वा जनामोदयन्ति) ऐसा अर्थ चन्द्र भाष्य मैं किया है तथा ऋ. १८५ पृ के चन्द्र भाष्य में अथर्व वेद का (तस्मैसुरां घृतंमध्वन्नमन्नं चदामहे) यह मंत्र देकर

(तस्मैईश्वराय गुरुवे वा सुरांनिवेद्य स्वयं पिबेत्) क्या उदासी अब सुरा पीनानहीं चाहते ? क्याश्याम गङ्गतन्त्र को भी सार्थक करना चाहते हों जैसा (मातृ योनिं परित्यज ताडयेत् सर्व योनिषु)तथा (मातरमपि न त्यजेत्) इन से जाति विकलता नारी सेवनता तो स्पष्ट ही है जैसे (श्रीचन्द मद्यमा जातन कोये) वैसा ही निरुक्त लेख है चन्द्रभाष्य में वन्नों का नाम तारिणी भी धरा है जैसे (द्यौमेपिता) ऋ. २. ३. २०—३ मं: मैं (अत्रमातृशब्देन वन्नों देवी (तारिणी ग्राह्या) पृ. २५१ भाष्य चन्द्र में यांते वामता उदासी वामियों की अति स्फुट है और चन्द्रभाष्य पृ० १४१ में (तारिणी यत्र पीठेतु शिलारुपेणतिष्ठति, तत्र यत्नेन गन्तव्यं फलसंख्या नविद्यते ।। यह नीलकण्ठ तंत्र का वचन लिखा है जिस को तंत्र तत्व प्रकाश के पृ० ५० श्लोक ८ का तारानन्द ने लिखा है अतः उदासी अवतारिणी पन्थी भी वन गये तथा चन्द्रभाष्य में (त्रिकोणांतारिणी चक्रं वेद शास्त्र विधानतः—योजयेत्तु व्युदासीनः शुध्याचार योगतः) इस नीलकण्ठ के वचन से वन्नों वा तारिणी चक्र लिखा है। उदासियों ने समझा कि चन्द्र भाष्य का किसी ने अध्ययन ही नहीं किया होगा, परं वामियो ! स्मरण रहे कि इस चन्द्रभाष्य का पुरा २ रहस्य हमको ज्ञात है, क्योंकि हमारे पास लिखित पुस्तक वहुत पुराणे समय के पड़े हैं। यदि आपको अभिलाषा हो तो, नानक भाष्य वा वालुहसन भाष्य या फुलशाह भाष्य यद्वा नारद वा सनत्कुमार भाष्यादि वहुत भाष्य जमा हैं। सो देख सक्तेहों, परं वन्नों का नाम अम्बिका भी चन्द्रभाष्य मैं लिखा है, कि, (तथापि स्वाम्बिके तारे तव दर्शनतः शिवे ! पाहिमां तारसंभूते दासोऽहं ते दयानिधे) तथा (सर्वाङ्गसुन्दरो वीरः च्चात्र तेजोऽन्वितो वरः) इस भुमिचन्द्र सें वीर पन्थ तथा दास पन्थ भी चला था सो अव भी उदासियों मैं वर्तमान हैं ।। (भूमितो भूमिचन्द्रोऽभूत् दैत्यदर्प विवर्द्धनः) इस नीलकण्ठ तन्त्र के प्रमाण सें संभव है कि, भुमिचन्द्र का अर्थ उदासियों को श्रीचन्द्र विवक्षित हो ।। क्योंकि इन वामियों को संज्ञा वाचक शब्दों के अर्थ खूब वदलने आते हैं। तथा (पूजयित्वा तु तद्याजां वन्नों देवीं च सर्वदा ततो गच्छेदुदासीनो मुक्ति भुक्ति प्रदायकाम्) इस नील तन्त्र मैं तो वन्नों देवी सर्वदा सर्वत्र उदासियों के लिये मुक्ति वा भुक्ति प्रदातृत्वेन प्रसिद्ध है ? ये समस्त प्रमाण वचन चन्द्र भाष्य के पृ० २५ पं० ५ सें पृ २७ तक लिखे हैं। (गधेज पन्थी उदासी) एक समय गुरु नानक देव ग्राम सें ग्रामान्तर को जा रहे थे तो मार्ग मैं एक गधा गेरुवा वसन वाला देखा तो नानक ने प्रणाम किया था तब सें उदासी गधेज पन्थी बने थे सो

इससमय भी पञ्जाव प्रान्त में गर्धवप्रिय उदासी वीरमदास धीरम दासादि गधेज पन्थी वहुत हैं और गधे पर काला मूख कर के विचरते हैं ॥ (नहि कस्तूरिकोगन्धः शपथेनाभिभाव्यते) इस नयन विकल व्यक्ति ने तो ऐसी पण्डिताई दर्शाई है, जैसी कि एक चोवा मथुरा मैं विद्या पढ़ने को गया वहां एक धूर्त पण्डये के पास १२ वर्ष तक निवास करा परं खूव चन्दन घिसता रहा अक्षर तो एक नहीं पढ़ा, केवल पण्डये ने छे (६) वाक्य रटा दिये कि मानों अन्धे कल्प वेद दर्शनाचार्य्य बनगया, (१ उच्चैः स्थानेषु पण्डितः) (महाजनोयेनगतः स पन्थाः) "अन्नं ब्रह्म-अन्नं न निन्देत् दृष्ट्वा च भक्षयेत" "शाकेषु कुलथीश्रेष्ठः" "उद्योगः पुरुषस्य लक्षणम्" स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते, प्रथम पढ़ कर अपने ससुराल मैं आया तो, खूब अगवानी की गई ॥ तब कुरसी मेज लग गये, परं पण्डित जी ता बुद्धिमान् थे, क्योंकि वेद दर्शनाचार्य्य तो नवीन ही बने थे, उसे द्राक् स्मरण हुआ कि, (उच्चैः स्थानेषु पण्डितः, तब वह उच्चा स्थान देख कर गोमय रूढ़ी पर बैठ गया, क्योंकि गोवर कुरसी से उच्चा था ॥ पुनः खाना पूच्छाकि क्या वनें तो उत्तर मिला कि, शाकेषु कुलथी श्रेष्ठः, अब तो बन गये रोगी राज यक्ष्मा के ॥ पुनः शौचं को गया तो मार्ग में शव लेकर जन समूह जाता था तब पण्डित को स्मरण हुआ कि (महाजनो येन गतः स पन्थाः) इसको पढ़ श्मशानों मैं पहुंच गये, जनोंने पिंड धरे तो पण्डितजी बोल उठे कि "अन्नं ब्रह्म-अन्नं न निन्देत् दृष्ट्वा भक्षयेत्" समस्त पिण्ड खा लिये पेट भर घर आया तो पण्डिताई झलक पड़ी, परं पण्डित का साला राज द्वारका नौकर था उस के साथ राज महल को गये तो, अभी राजा घर से न आया था तब पण्डित का साला राजा के बुलाने को गया, तो पण्डित को स्मरण हुआ कि "उद्योगः पुरुषस्य लक्षणम्" पाषाण लेकर समस्त सीसे मकान के तोड़ दिये; राजा ने पण्डित जी को दण्ड दिया कि काला मुख कर के गधे पर वैठायो और सब ग्राम मैं फेरो, तब पण्डित जी गधे पर बैठ कर बोले कि (स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते) अतएव किसी कवि ने लिखा है कि (प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्यच दर्पणं-अतो बुद्धिमतां शास्त्रमबुद्धेश्च तिरस्कृतिः) प्रज्ञाहीनस्य नाम-अन्धस्य विकलनयनस्यवा, बस ऐसा ही समाचार इस अन्ध गङ्गादास का है ॥ एक बार श्रीचन्द्र ने भी पिता का अनुकरण किया था कि, कोई रज्जु नामक धोबी वस्त्र गेरुवे को धोता था तब श्रीचन्द ने उस रज्जु को प्रणाम किया तब से रजक पन्थ चला था ॥ यह वन्नों पटल के पृ० ११ पं० ५ में है ॥ एक बार

श्रीचन्द किसी बनिये की दूकान से सेर भर चीनी चुरा कर लुटिया में धर घर में आया तो गुरु नानकदास ने कहा कि तू क्या लेकर आया है, तब श्रीचन्द ने कहा कि कुच्छ नहीं तब नानक जी बोले तूं मिथ्या बोलता है, इस से तेरा नाम अलीक हुआ, तब से उदासियों में अलीक पन्थ चल पड़ा था, सो श्रीचन्द के शिष्य गिलाफशाह का शिष्य मौज़मशाह था उसने अलीक पन्थ का बड़ा ही आदर किया था पुनः उसके शिष्य अलीके शिष्य नेरूशाह ने अलीक पन्थ को बहुत कम कर दिया था, अब वर्तमान में उदासी पुनः उसी अलीक पन्थ का आदर करते हैं। क्योंकि भाषाज्ञ उदासी तो अलीक पन्थ से भय करते हैं पर अब इनके पण्डित गण उसी पन्थ को चलाते हैं, जैसा मिथ्या अपना गुरु प्रणाला लिखना, और राम कृष्ण जी को उदासी बनाना चौथे पौड़े से चतुर्थाश्रमी बनना ये मौज़मशाह का अनुकरण करते हैं ॥

श्रीचन्द को वन्नों ने कशमीर की तर्फ भेजना चाहा परं श्रीचन्द गया न था, क्योंकि इनके पिता इन के मुसलिम विचार वा प्रचार से नाराज़ थे फिरभी ८५ यवनों को वन्नों देवी की प्रसन्नता वास्ते उदासी बनाया था, ठीक सचाई छिपती नहीं क्योंकि गङ्गेश्वरा नन्द ने भी अपने पुस्तक के पृ० ८० में मुहम्मद के चार खलीफे लिखे हैं। वैसे ही पृ० २४ में उदासियों के चार धूने लिखे हैं उन चारों धूनों के चार प्रवर्तक भी लिखे हैं। जैसे अलीमस्त १ बालुहसन २ गोईन्दीन ३ फूलशाह ४ परं ये चारों मुसलमान थे क्योंकि मुहम्मद जूफा, के पृ० २५ में इन चारों को मुहम्मद के शिष्य अबूवकर के शिष्य लिखे हैं क्योंकि इन चारों के नाम तो साफ मुहम्मदीय हैं यांते मुद्रा पन्थी वा सैली पन्थी श्रीचन्दने इन चारों मुसलिमो द्वारा खूब उदास फैलायाथा क्या श्रीचन्द को अपने पिता का भय न था जो मुसल्लों को उदासी बनाताथा? हां पिता नानकदास से नहीं डरता था, क्योंकि नानकदास के घर ३२ वर्ष की आयु में १५५७ वि० को श्रीचन्द्र उत्पन्न हुआ था नानकदास का जन्म १५२६ में हुआ था परं जन्म से लेकर नानक की मृत्यु पर्य्यन्त श्रीचन्द वा लक्ष्मी दास दोनों उन की आज्ञा में नहीं रहे तब नानक ने अपने शिष्य लहणे को अपनी गद्दी प्रदान की थी उस का नाम अङ्गद धरा था, परं श्रीचन्द की माता सुलक्षणा मूले की पुत्री थी उस को पता चला कि मेरे पुत्रों को गद्दी नहीं दी तब उस ने बहुत कहा पर नानक ने कहा कि ये दोनों नालायक हैं, अक़लमन्द नहीं और

मेरी आज्ञा भङ्ग भी करते आये हैं, तब माता ने कहा कि अब आप की आज्ञा मानेंगे तब नानक ने कहा कि श्री चन्द ! इस मूषिका को बिल्लो अर्ध भक्षण कर छोड़ गयी है, तुम इस को उठा कर दूर फैंक दो तब उत्तर मिला कि पिता जी तुम तो मदारो हैं हम मूषिका क्यों कर उठावें और नौकर बहुत हैं उन्हों को कहा दो हम मुर्दे नहीं उठाते हैं॥ फिर लक्ष्मीदास को कहा तब उस ने भी वही उत्तर दिया,॥ १॥ फिर एक दिन रात्रि को नानक ने कहा कि श्रीचन्द ! यह वस्त्र हमारा धो ला तब श्रीचन्द नै कहा कि पिता जी आप के ऊपर तो भूत सवार है। हम कोमल कर रात्रि का शरद ऋतु के शीतल जल में कैसे वस्त्र धोवें प्रातःकाल होगा तो भृत्य प्रक्षालन कर देगा॥ लक्ष्मीदास ने भी वही उत्तर दिया॥ २॥ एक बार फिर नानक नें कीचड़ में एक बर्तन छोड़ दिया तब उसे निकालने को श्रीचन्द सें कहा तब उत्तर मिला हमारे बहु मूल्य वस्त्र कीचड़ में खराब होंगे किसी अन्य से कहो लक्ष्मीदास ने भी वही कहा तब नानक की पत्नी भी दूःखी हुई॥ और एक बार सुलतानपुर में जहां श्री चन्द पैदा हुआ था वहां पर तीन दिन तक वर्षा होती रही तब सर्व संगतां भूख से दुःखी होईं तब नानक जी ने श्री चन्द्र वा लक्ष्मीदास से कहा कि जाओ किकर का वृक्ष हिला कर इन सर्व को अन्न खिलादो तब नालायक दोनों पुत्र बोले कि पिता जी अब पागल हो गए हैं क्योंकि कभी किकरों को भी अन्न लगता है जो हम वृक्ष हिला कर सर्व को तृप्त कर दें॥ परं ये चारों कार्य्य निस्सन्देह लहणे ने कर दिये थे तब लहणे को गद्दी मिली थी वास्तव में नानक जी मरासी (मरदाने) को हर समय पास रखते थे, परं श्रीचन्द के कहने पर नानक दास नहीं माना था तब श्रीचन्द ने अपने साथ मुसल्मान उनकी स्त्रियों को रक्खा—इस से दोनों पिता पुत्र का दिल दुखित था, श्रीचन्द का मुसल्मानों को उदासी बनाने मैं भी यही एक मात्र हेतु था, शराब और मांस खाना आरम्भ कर दिया था, केवल नानक को दुःखित करने के लिये श्रीचन्द सुरापान मैं इतना अधिक प्रवृत्त हुआ कि, लक्ष्मीदास को भी इस का सङ्ग छोड़ना पड़ा था, यह समस्त समाचार नानक प्रकाश के पूर्वार्ध २६ अ० मैं तथा उत्तरार्ध के ५२ वा ४८ अ० मैं लिखा है॥ और सुलतानपुर मैं लद्धे नापित के कहने से नानक ने श्रीचन्द को सुलतानपुर सें बन्द कर दिया था, कि यहां मत आना यह समस्त बृत्तान्त श्रीचन्द सोहले के पृ० ११ पं० ६ मैं लिखा है॥ यह भी लिखा है कि, सुलतानपुर मैं बेई के तट पर श्रीचन्द कुच्छ ग्राम्य कर्म्म मैं प्रवृत्त हुआ था, परञ्च वह कृत्या

प्रमदा स्वबन्धुओं मैं विवाहिता थी, यह समाचार नानकदास को असह्य हो गया, तीन दिवस पर्य्यन्त उपवास पूर्वक वृक्ष सें उलटा लटकाया था। ऐसी बहुत वार तपस्या कर चुका था, जाना जाता है कि, गङ्गादास ने श्रौ० पृ० २३ मैं नानक द्वारा की गयी निन्दा को सहन न कर श्रीचन्द को नानक के पुत्र होने मैं भी संदेह लिख दिया है, क्यों न करें अपने गुरु का जीवन चरित्र भी तो मान्य होता है ॥ सो नानक का पुत्र होने पर समस्त दोष आते हैं ॥ इसी लिये संदेह अवश्य कर्तव्य ही प्रतीत होता है, इस अन्धे ने पृ० ७ सें २२ पर्य्यन्त श्रौ० मैं यति, मुनि, संन्यासी शब्दों का अर्थ उदासी पन्थ किया है, सो सर्वथा अशुद्ध वा शास्त्रानभिज्ञता का वोधक है ॥ क्योंकि उदासी शब्द सर्वत्र विशेषण परक है, विशेस्य परक नहीं, यदि उदासी शब्द यति मुनि शब्दों का विशेष्य होता तो इस अन्धव्यक्ति की कुचेष्टा संवादी होती, परं किसी भी निवन्ध मैं उदासी शब्द यति मुनि संन्यासी शब्दों का विशेष्य रूप सें नहीं आया, परं गङ्गादास यदि दिखादें तो यति वर्ग उस को उपधि प्रदान करेंगे ॥ पुनः श्रौ० पृ० ३४ मैं राजा जनक को भी उदासी पन्थाई लिखा है, परं इस मिथ्या पन्थी ने कोई प्रमाण नहीं दिया हम कहें कि श्रीचन्द वा नारद नाई था, इस मैं प्रमाण क्या ? अतः प्रमाण सहित लिखना श्रेयस्कर होता है, निष्प्रमाण, नहीं ॥ क्यों न लिखें अलीक पन्थ तो इस अन्धे के आधार पर ही है ॥ पुनः श्रौ० पृ० ४२ मैं वौधायन सूत्र का भी खूब अनर्थ किया है ॥ क्योंकि आप तो अलीक पन्थी हैं ही परं औरों को भी बनाता है ॥ श्रौ० पृ० ४७ मैं सुरेश्वराचार्य्य को प्रमाण दिया है ॥ जिस से साफ संन्यास का विधान है ॥ उदास पन्थ का तो नाम भी नहीं है; उदास तो केवल तीन सौ वर्ष का छोकरा है, इस मैं प्रमाण कहां सें आते, परं चोरी पेशा के लोभी अलीक पन्थी अवश्य उदास की पुष्टि मनमानी करेंगे ॥

पुनः श्रौ० पृ० ७७ मैं लिखा है कि, "उदासी, संन्यासी, यति, परिव्राजक, ब्रह्मसंस्थ, आदि शब्द चतुर्थाश्रमी के वाचक हैं ॥ आश्रम के नहीं ॥ समीक्षा भला इस अन्ध व्यक्ति से पूच्छना चाहिये कि, आश्रम वाचक शब्द कौन हैं। भला जैसे संन्यास शब्द आश्रम का वाचक है, वैसे क्या उदास शब्द भी किसी निवन्ध मैं आश्रम का वाचक आया है ॥ यदि आप के कथनानुसार उदासी शब्द आश्रमी का ही वाचक है। तो उदास शब्द आश्रम का वाचक अनिवार्य्य है, परं उदास वा उदासी आश्रम वा आश्रमी के वाचक ही नहीं केवल शब्द है, वक्ष्यमाण अर्थ मैं रूढ़ है, आश्रम वाचकत्व मैं कोई भी प्रमाण नहीं है।

हां भोले भाले सनातनियों को धोखा देना अवश्य धूर्तता का काम है। परं स्मरण रहे कि इस अन्ध व्यक्ति ने (व्रीडा नयन धर्म्मिका) इस का अनुकरण खूब किया है। परं क्या करें वेद शास्त्रों को भी दर्पण बताया है, सो "यथान्धस्य च दर्पणम्" दर्पण देखना तो सनयन व्यक्ति का काम है, अन्धों का नहीं, पुनः श्रौ० पृ० ७४ मैं लिखा है कि, "सांख्य कारिका के उदासीन शब्द सें उदासी पन्थ सप्रमाण है। समीक्षा—यह इस अन्धे का भ्रम है, क्योंकि इस (गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्तेव भवत्युदासीनः) २० कारिका मैं तो उदासीनशब्द जीव (चेतन) परक हैं" "चेतनस्याकर्तृत्वाद् कर्तुश्चाचैतन्यात् इति वाचस्पतिना" अचैतन्यगुण चेतन उदासीन पुरुष की सन्निधि सें करते हैं, पुरुष उदासीन अकर्ता है, तो भी कर्तृकल्प प्रतीत होता हैं, "गुणकर्तृत्वेऽपि बुद्धयादिरूपेण गुणानां कृतिमत्वेऽपि तत्प्रतिबिम्बितत्वाद्-उदासीनोऽपि पुरुषः कर्तेव भवति—इति बालरामः" यद्यपि बुद्धि द्वारा गुणों निष्ठ कर्तृभाव हैं, तथापि भ्रान्ति सें पुरुष निष्ठ कर्तृत्वभाव प्रतीत होता हैं॥ अब विचारना चाहिये कि इस अलीक पन्थी ने कितना अनर्थ किया है, देखो उदासीन शब्द केवल पुरुष का विशेषण दिया है, जो कि अभेद संसर्गक उदासीन प्रकारक पुरुष विशेषक शब्द बोध होता है॥ "कथं भूतः पुरुषः उदासीनः" यह अर्थ वाचस्पति का वा आपके गुरु श्रीमान् पण्डित बालकराम का है क्या विशेषण शब्दों को विशेष्यार्थक माना केवल हठ ही नहीं है, इस मैं मूर्खता भी खूब भरी है॥ (घट मैं गङ्गा घट मैं जमुना वहीं द्वारका काशी, घर वस्तु बाहर क्यों ढूंढें बन बन फिरें उदासी) यह सन्त सिङ्गा जा ने उदासी का अर्थ मूर्ख किया है, सो इस कारिका के अर्थ मैं आप ने खूब सार्थक किया है॥ अलीक पन्थी होने सें चोरी करना आपका काम है, परं विरासत करना हमारा काम है। क्या उदासीन शब्द को विशेषण मानने वाले वाचस्पति वा बालकराम को भी तुम उदासी (मिथ्यावादी) समझते हो इस कारिका मैं उदासीन शब्द पुरुष का विशेषण है, किसी पन्थ का नहीं ज्ञात होता है कि (एषो बन्ध्यासुतो याति शशश्रृङ्गधनुर्धरः) इस का प्रमाण देकर बन्ध्या पुत्र को भी युद्ध यात्रा के लिये जाता सिद्ध करोगे और खर्गोश के शींगों का उदासियों को नरसिंगा बनायेगे—धन्य है, अलीक पन्थी (बिभेति-अल्पश्रुताद्वेदो) पुरुष क्या मात्रा है॥

परं प्रकरण मैं दृष्टिपात करना किसी सनयन व्यक्ति का काम है, बतायो जिस को सांख्य कारिका के अर्थ का भी ज्ञान नहीं वह अन्य शास्त्रों मैं क्या दम भरेगा॥ यदि यह पन्थाई सांख्य को किसी

शास्त्रश्रमजुट् सें पढ़ता तो ऐसे भ्रम मैं न पड़ता न इन को कोई लांछित ही कर्ता ।। श्री० पृ० ८० में संन्यासी वा परिव्राजक यद्वा यति शब्दों का सनन्दनादि में प्रयोग लिखा है परं इस लेख में तो इस वुद्धि के बुद्ध ने अपनी विद्वत्ता खूब दर्शाई है, क्योंकि जब सृष्टि के प्रथम ये चारों सनन्दनादि उत्पन्नहुये थे और कुच्छ भी न था, तो अन्धव्यक्ति को यह नहीं सूझा कि त्याग किसका और कैसा हो सक्ता है, यदि कुच्छ न होने पर भी त्याग मानें तो गरीब लोग श्रीचन्द्र केभी या सनन्दनादि के भी गुरु होने चाहिये, अन्यथा सति विद्यमाने त्यागः ऐसा मनाना होगा क्योंकि (प्राप्तौ सत्यां निषेधः) जब सृष्टि के आदि में और कुच्छ नहीं तो आप के गुरु ने त्याग किस मुलिका का किया था, यातें इन चारों में संन्यास का प्रयोग ही हो सक्ता, पुनः ऐसा लिखना मूर्खता का काम है, पुनः पृ० ८१ में "निरपेक्षा प्रजासुते" पद्मपुराण का यह पाठ बदला कर यह लिख दिया है, कि "ह्युदासीना" ऐसा कर दिया है इस से मिथ्यावादी पन्थ का रङ्ग खिलता है, क्योंकि मिथ्यावादी पन्थ तो उदासियों का प्रसिद्ध ही हैं, इस का जन्म दाता बाबा नानक भक्त का लड़का श्रीचन्द हुआ है, क्या शास्त्रों का पाठ परिवर्त्तन करना केवल स्वार्थता ही है, नहीं नहीं इस में मूर्खता भी खूब दर्शाई है, पुनः पृ० ८२ में लिखा है कि, "पद्मपुराण के पश्चात् यति परिव्राजक वा संन्यासी शब्द चतुर्थाश्रमियों के लिये प्रचलित हुये हैं, यति या संन्यासी परिव्राजकों का भेद है, अब विचारना चाहिये कि इस अन्ध व्यक्ति के शिष्य भी अति मूर्ख हैं, क्योंकि उल्लूक को रवि दर्शन नहीं होता तो क्या रवि का अभाव हो सक्ता है, वैसे ही इस अन्धे पण्डित को भी वेदों में यति वा संन्यासी या परिव्राजक शब्द नहीं दीख पड़ा तो क्या संन्यास का अभाव हो सक्ता है, ठीक तो यह है कि, "वैलन कूदा, कूदी गौन" देखो किसी मूर्ख ने (उदासीनस्य क्रूरस्य जटिनः कौलिकस्य च मद्यमांसादि वाजिना कालो पूजा विधीयते) इस वेदरत्न तंत्र के श्लोक को भी बदल दिया है, परं इस के बदलने वाला मूर्ख छोकरा यदि अपने लेखानुसार पाठ बता दे तो हमारे शिष्यों को अपने शिष्य बनाले अन्यथा इस मूर्ख को नागियों का छोटिया बनना पड़ेगा। यद्वा नाक भग्न का नियम माने ।। बताओ अब कैसा पन्थ चलायाहै, कि श्रीचन्द ने तो पिता सें लड़ कर ही चोरी की थी, ये मूर्ख पण्डित मण्डली पन्थाई विना कारण ही चोरी करते हैं। क्या यह उदाससियों की वामता नहीं तो गुरु की पूच्छ है, यातें वेदरत्न के प्रमाण से उदासी नाम वामी वा मूर्ख या शाक्तिक वा मद्यमांस सेवी का है ।। इसी लिये

सिक्खों ने इन धूर्त उदासियों को अलग कर दिया है, क्योंकि व्यसनी पुरुषों से सब डरते हैं ।। इन पन्थाई दासों ने सिक्खों में, वहुत मद्य का प्रचार कर दिया था, जैसे कि (उदासीनाः खलु वीराः शूद्रवंशे च सम्भवाः सुरापानरता नित्यं काली पूजा परायणाः ।। २ नरश्छागश्च महिषो मेषस्तु-परएव च शशकः शल्की गोधा खड्गी कूर्मोदशस्मृताः ।।३।। वानरश्च स्वरश्चैव गजाश्वादि विहङ्गमा इत्यादिभिर्वलीः दानैश्चन्द्रपन्थी च पूज्येत् ।।४।। ये श्लो० चन्द्रभाष्य के पृ० ४१५ में काली (वन्नों) पूजन प्रकरण में लिखे हैं, इस लिये उदासी तो सर्वथा भ्रष्ट हैं ।। अरे उदासी वामियो तुम ने अपना स्वरूप देखा था वा नहीं ? देखो आप के गुरु ने चन्द्रभाष्य में तुम्हारे लिये कैसी आज्ञा प्रदान की ।। और मात्रा बालुहसन के पृ० ३७ में लिखा है कि श्रीचन्द भाष्य ऊलूठ वनायो, वामी मत अपनों दर्शायो १ इस के मत पर जो नर चाले, सो सब अपनो भलाहि भाले २ जो मत वाम गुरुका टारे तांकु हीं यमदूत पछारे ३) इस गुरु नवीनखाँ की आज्ञा सें सब उदासियों को अपने गुरु का वाम मत अवश्य मानना होगा ।। निश्चय हुआ कि संन्यास ही केवल वैदिक है ।। अन्य मत समस्त अवैदिक हैं । परं उदास पन्थ तो किसी भाषा के निबन्धों में भी नहीं आता, हाँ वाम मत के भ्रष्ट निबन्धों में भ्रष्ट प्रकरणों में आता है, जैसे कि ऊ.र श्लो० चन्द्रभाष्य के हैं ।। (संन्यास शब्द) आप संन्यास शब्द को स्मृतियों में तो मान ही चुके हों ।। अब वेदेतिहासों में भी दिग् दर्शन दर्शाते हैं ।। महा भारत भीषम पर्वादि में तो अधिक है, "संन्यासं कवयो विदुः" "यति पूज्यो युधिष्ठरः" "संन्यासं सर्वभावेन" "खलु संन्यास मित्याहुः" "यत्र वै येन संन्यासी" इत्यादि बहुत वार संन्यास शब्द का ही प्रयोग किया है । बाल्मीकि में भी "सपरित्राजकश्छद्मा महाकाय शिराधरः" "रुचिः संन्यास कर्म्मणि" "कुर्य्याच्च यति सन्निधौ" क्यों बावाज्जी अब तो इतिहासों में भी संन्यास का विधान है, फिर आप के तुण्ड त्रिवर सें यह शब्द कैसा निकला था कि, संन्यास स्मार्त ही है ।। हाँ पामर ग्रन्थों में नहीं है ।। अब अन्य वेदों में भी संन्यास का दिग् दर्शन कराते हैं ।। (संन्यासिनं द्विजं दृष्ट्वा, परमहंसः शिखा, संन्य उ० मं० में लिखा है, क्या अब भी वेद में संन्यास नहीं हैं, और पद्मपुराण के पश्चात् वा दत्त के बाद संन्यास चला यह लिखना . महा मूर्खों का काम है, क्यों जी अब उपनिषदों में भी संन्यास का विधान सिद्ध हो गया है, क्या तुम को (नीचः श्लाघ्यपदं प्राप्य स्वामिनं हन्तु मिच्छति मुषिका व्याघ्रतां प्राप्य मुनिं हन्तुं गतो यथा) भी इस प्रकार करना खूब आता है, (यद् हरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्) ब्राह्मणाः पहिव्रजन्ति । जावा-

लोपनि, क्या अत्र भी संन्यास अनादि नहीं. और महाभारत में भी (प्रैषमा-त्रं समुच्चार्य्य संन्यासं तत्र पूरयेत्) और भाल्लवी श्रुति में भी (संन्यासो हि सर्वेषां मोक्ष साधनमुतमम्) तथा वृहज्जावाल श्रुति में भी (अथ परिव्राड्) (संन्यासी) (विवरणवासा) कु० पु० श्वेताश्वतर मुनि ने भी (संन्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः) तैतिरीय श्रुति में भी न कर्म्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैक) (संन्यासे नैक) अमृतत्वमानशुः) तथा वृहदारण्यक में (एतमेव प्रव्राजिनो लोक मिच्छन्तः प्रव्रजन्ति) तथा छान्दोग्य श्रुति में (ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति) तथा पैङ्गी ब्राह्मण (रहस्य) में (यदि मृत्योः परंशान्तम नामयं शाश्वतं पदमिच्छुरसि तत्परमहंसोभव) महाभारत में (आत्मन्यग्नीम् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेत् गृहात्) तथा मुनि कात्यायन ने (प्रव्राज्या वसिता यत्र त्रयो वर्णा द्विजातयः) और ज़ावाल श्रुति में (ब्रह्मचर्य्यं परिसमाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनीभवेत् वनीभूत्वा प्रव्रजेत् यदि वेतरथा ब्रह्मचर्य्या देव प्रव्रजेत् गृहाद्वावनाद्वा अथ यद् हरेव विरजेत्तद् हरेव प्रव्रजेत्) तथा नारायणोपनिषद् में (वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद् यतयः शुद्ध सत्वाः) तथा मुण्डुक में भी ऐसा ही है तथा यजुर्वेद में (ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्—तेनत्यक्तेन (संन्यासेन) भुञ्जीथामा गृधः कस्य स्विद् धनम् ।। तथा शतपथ में (तं-आत्मानं-विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायश्च वित्तैषणायाश्चलोकंषणायाश्चव्युत्थाय अथ भिक्षाचार्य्यं चरन्ति) पुनः शतपथ में (एतमेव विदित्वा मुनिर्भवत्येतमेव प्रव्राजिलोक मिच्छन्तः प्रव्रजन्ति) पुनः शतपथ में प्रव्रजिष्यन् वाऽरेऽहमस्मात्) तथा साम वेद में भी (प्रेष्ठं वा अतिथि ँ स्तुषे मित्रमिव प्रियं-अग्ने ? रथं न वेद्यम्) इस मन्त्र में अतिथि शब्द संन्यासी परक है क्योंकि सब से श्रेष्ठ होने से तथा उपमान होने से यह नियम है कि उपमान वाचकों में श्रेष्ठतम का ही ग्रहण होता है, इस मंत्र में कात्यायन कृत विकृत वल्ली का प्रमाण भी है, (उपमाने श्रेष्ठेषु श्रेष्ठतमः) तथा पुनः सामवेद में (मानो हृणीथा अतिथिवत् वसुरग्निः) इस मंत्र में भी यति का ग्रहण किया है, तथा पाणीनि मुनि ने भी (मस्करमस्करिणौ वेणु परिव्राजकयोः) तथा कात्यायन ने भी व्रश्चेति सूत्रे-परौ व्रजेः षः पदान्ते) तथा सांख्य दर्शन में (विरक्तस्य) (पतेः) (तत्सिद्धेः) तथा वैशेषिक दर्शन के प्रशस्तपाद भाष्य में (अभयं दत्वा संन्यास्तस्वानि कर्म्माणि) पुनः वै० द० में (चतुराश्रम्यमुपधा अनुपधाश्च) तथा कात्यायन श्राद्ध सूत्रों में (एके यतीन्) तथा शतपथ में प्राजापत्या-मिष्टिं निरुप्य सर्वं वेदसं तस्यां हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत्) तथा ऋग्वेद में (यद् देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत) तथा अर्थववेद में (भद्रमिच्छन्त

(ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे) इस मंत्र मैं भी संन्यास रूपी दीक्षा का विधान है ॥ तथा ऋग्वेद मैं (यत्र कामा निकामाश्च यतयः) तथा अथर्ववेद मैं भी (यत्र ब्रह्मविदो) (संन्यासिनो) यान्ति दीक्षया तपसा सह) इस मंत्र मैं भी साफ लिखा है कि, दीक्षया संन्यासतया विधि सें यति सर्व का त्याग करें ॥ तथा तैत्ति० प्र० १० अनु० ६३ मैं (तस्मात् न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः) तथा कौ० उ० अ० ३ मं० १ मैं (अरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्) तथा तै० संहिता ६-२-७-५ (इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्) तथा तै० कृ० संहिता मैं भी (इन्द्रो मायाभिर्बहुरुपं भूत्वाऽनात्मज्ञान् संन्यास कृधीन्त्वन्ये वृकेभ्यः प्रायच्छम्) तथा कौ० साम संहिता (संन्यासिनः प्रायच्छत् यज्ञभाजिनो बृकेभ्यः) तथा च कौ० ब्रा० (अवाङ् मुखान् यतीन् शालावृकेभ्यः प्रायच्छत्) तथा अथर्व वेद की कौ० संहिता मैं (यः संन्यासं कुर्यात् न सः प्रेत्याकृधि ? संगमयत) क्यों जी इतने वेदों के प्रमाण जागरुक होने पर भी जो पेट पालु हुग (पिग) नर संन्यास यति वा परिव्राजकादि शब्दों को नवीन शल्यण करते हैं, तो "अन्धो हि कीदृशो भवति" यह कथन अवश्य करना पड़ेगा ॥ वस्तुतः जैसे नेत्र हीन पुरुष को सूर्य्य का ज्ञान नहीं होता, तैसे ही अनाश्रमियों को भी संन्यास वा संन्यास प्रतिपाद्य वेद दर्शन भी नहीं होता, किन्तु (अन्धो जन्मनि जन्मनि) इस उक्ति के अनुसार जन्मजन्मान्तरों के अन्धे को कभो शास्त्र के मर्म का ज्ञान नहीं हो सक्ता ॥ भला (-अन्ध जाट को शास्त्र वाट) यह उक्ति धन्ये जाट की कभी व्यर्थ हो सकती है ॥ यातें इस अन्धे गङ्गेश्वरानन्द ने भी शास्त्र को न जान कर स्वबुद्धि का नाश कर लिया है ॥

क्योंकि जाटों मैं जो अन्धे होते हैं, तिन को मृदु स्वरुप भी शास्त्र पत्थर के समान होता हैं ॥ यह धन्ये जाट का नियम अनिवर्य्य है ॥ क्या कोई कम से कम भी पढ़ा हुआ पुरुष इन निरुक्त प्रमाणों को नवीन शल्मणा कर सक्ता है ? कभी नहीं हाँ नेत्र हीन बुद्धि भ्रष्ट शठ वा मूर्ख हठी तों इन वेदों के प्रमाणों को भी कहदेगा कि नहीं हैं ॥ परं उल्लुयों के कहने सें क्या सुर्य्याभाव दृष्टचर हो सक्ता है। हाँ विद्वानों के उपहास्य का विषय तो अवश्य है ज्ञात होता कि जैसे किसी ग्राम मैं कोई मौलवी मौलवियों से बहस करने गया, उसका नियम था कि जो हार जाये उसके ग्राम का सब माल मत्ता जीतने वाले लेलें, परं एक ग्राम मैं मौलवी न थे । वहां पर एक जाट बहुत हठी और शठी था उससें सब मुसलमानों ने कहा कि यदि आप बहस करें तो हमारी जीत अवश्य होगी। आप

मौलवी वनकर चलें और बहस करें ॥ क्योंकि तुम अनपढ होने पर भी हम सब मैं अकलमन्द हों ॥ तब उस जाट ने अर्ध ग्राम का हिस्सा लिखा कर कहा कि, आयो चलो जैसे मैं कहूं वैसे ही तुम करना, जीत तुम्हारी अवश्य होगी । जब दूसरा मौलवी किताबों के शकट लाद कर ग्राम मैं आगया, तो मुसलमानों ने जाट सें कहा कि, अब क्या कर्तव्यता है, तब जाट ने कहा कि १०० सौ गजकी मेरी पगड़ी बनायो और ५० गज की एक अलफी, और सब मकानों के दरवाज़े उतार कर खूब श्वेत् वस्त्रों मैं बान्ध लो, और ५० आदमी मेरे तुरले को उठावो और ५० अलफी को और धीरे २ इन सब किताबों (दरवाजों) को ले कर मौलवी की किताबों के पास खूब चिन दो फिर तुम्हारी जीत होगी ॥ उन्हों ने वैसा ही किया, तब वादी ने किताबों के इटालों को देख मन ही मन मैं वहां से भागना चाहा-इतने मैं जाट अपनी अलफी वा तुरले को १०० सौ नरों सें उठा कर वहां मौलवी के पास आया, और व्याघ्र के समान रक्त नेत्र कर वैंठ गया और सिंह के तुल्य गर्ज कर कहा कि, देखना बहस करने वाला मौलवी भाग न जाये। आज ६० वर्ष मैं खुदा ने तोफा भेजा है। और खूब जोर शोर सें अली २ हा २ बु० बु० के नारे लगा दिये। तब वादी भय सें कुरसी सें गिर पढ़ा तो उस जाट ने ऊपर से पीटना शुरु कर दिया, और सभा सब तितर वितर होगई। ग्राम वालों की खूब जीत हुई ॥ वस इस अन्धे ने भी जाना कि-हमारा तुरला तो उदासी पण्डित वनेंगे, और अलफीं डेरयां वाले महन्त होंगे, किताबें मैं अपनी कपोलकल्पना सें बनाता हूं। चलो सब मिल कर वैदिक संन्यासियों सें बहस करके अपना नाम रोशन करें क्योंकि (घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वा गर्दभ रोहणम् येन केन प्रकारेण नरः सिद्धा भवेदपि)

इस के अनुसार हम भी अपना अन्धता को काली करतूत लोगो मैं जागृत करें ॥ परं उदासियो ! स्मरण रहे कि, हम आप का दम्भ खूब जान गये हैं ॥ अब आप का तुरला आप को विजय नहीं करा सकता, क्योंकि यही तुरला आप उदासी मात्र के लिये पाशा का स्वरूप धारण कर गया है। और अलफी काली कोठरी बन रही है। इन प्रजापन्थियों ने वहुत (ढारन मैटर) उदासियों मैं प्रवेश करने का यत्न किया हैं ॥ देखो ??? उदासी जिस को अपना गुरु मानते हैं। उस श्रीचन्द ने कैसी अपनी काली कोरी विद्वत्ता दर्शाई है। कि (गुरु अवनाशी खेल रचाया। अगम निगम का पन्थ चलाया १ ज्ञान की गोदड़ी छिमाँ की टोपी-यतका-आड़वन्द शील लंगोटी २ अकाल खिन्था निरास झोली-युगत का टोप गुरुमुखी बोला ३ धर्म्म का चोल सत्य

की सेहली-मरयाद मेखली लै गले में मली ४ इस में श्रीचन्द ने स्पष्टतया कह दिया है ॥ कि मेरी बोली गुरुमुखी है। क्योंकि मैं संस्कृत भाषा नहीं जानता, न मैं पढ़ी है। इस लिये मेरे चेले उदासी भी संस्कृत न पढ़े। जो कभी भूल कर भी पढ़ेगा तो मेरा चेला हराम का होगा ॥ देखो "गुरु अव-इस रचना में अगम निगम (अण्ड वण्ड) का नवीन पन्थ चलाया है, यातें उदासी पन्थाई सिद्ध हुये ॥ "ज्ञानकी गो-इस रचना में गोदड़ी पन्थ, टोपी पन्थ, आड़वन्द पन्थ, और लंगोटी पन्थ, भो अवनाशीगिरि के चेले ने चलाये थे, इसी लिये केशवचन्द जैसे टोपी पन्थी थे," अकालखि-इस रचना में अकाल पन्थ, खिन्था-पन्थी, निरास पन्थ, झोलो पन्थ, युक्त (चोरी) पन्थ, टोप पन्थ, इस में गुरुमुखी भाषा लिखी है, महा धूर्तता का काम है। क्योंकि गुरुमुखी भाषा तो पश्चात् वनी थी, सो श्रीचन्ददास की महा गलती है," धर्म्म का चो-इस मैं भी चोला पन्थ, सत्य करतारिये पन्थ, सेहली पन्थ, मरयाद (मर्य्यम्) यवनों का पन्थ, मेखली (सपेरा) पन्थ, भी चला था, यह चारों मानो एक कुत्तिया है, इस के बच्चे सव उदासी पन्थाई हैं ॥ परं पिता का प्रभाव पुत्रों में कुच्छ न कुच्छ अवश्य आता है, इस लिये और तो सव काम भक्त नानकदास सें श्रीचन्ददास ने विरुद्ध ही किये थे, परं इतना सच्च हां कहा कि जैसे नानक अनपढ़ था, तैसे श्रीचन्ददास भी अपने को स्वयं अनपढ़ मानता है, कि मैं गुरुमुखी भी नहीं पूरी जानता ॥ यदि कुच्छ भी पढ़ा होता तो, ऐसी अण्ड वण्ड मन घड़न्त कल्पना न करता, देखो श्रीचन्ददास के मन मैं यवन वनने की कैसी जिज्ञासा निवास कर रही है, (शाह सुफैद जरद सुरखाई जो लै पहिरे सो गुरु भाई-नानक पूता श्रीचन्द बोले युक्त पछाणै तत्व विरोले २) अर्थ-शाह (काले) सुफैद (श्वेत) जरद सुरखाई (मजीठ इन रङ्गों के वस्त्र पहिनने वाले सब गुरु भाइ (नानक पन्थी) हैं ॥

यद्यपि भाई गुरदास जी ने निहङ्ग सिंहों को और निर्मलेसिंहो को उदासीसिंहों के गुरु भाई लिखा है। परं श्रीचन्ददास को तो यह इष्ट नहीं हैं। इस लिये नवीन मात्रा यह घड़ लिया है, कि काले वस्त्रों वाले यवन, और मजीठ वस्त्रों वाले कोरी डूमादि, तथा श्वेतों क्रिश्चिनादि सव हम उदासीयों के गुरुभाई हैं ॥ फिर श्रीचन्द दास ने जटा का मंत्र लिखा है, कि (ऊ अं सोभ श्रीचन्द यति के माथे सोहे—रोम स्ववर्ण का देख के सो जटा आत्मा मोहे) ऊ अं कार ब्रह्म ऊ अं कार अवनाशी, जटा जूट शब्द प्रकाशी यह श्रीचन्द की बुद्धि की काली करतूत है। भला जा कुच्छ भी बुद्धि रखता हो वह इस लेख से श्रीचन्द दास को विद्वान

कहेगा ! या लालवुझक्कड़ का चेला । अस्तु नानक दास ने तो केवल निर्भौ शब्द का प्रयोग किया था, परं इसके छोकरे ने तो उ अंकार लिख मारा था, उदासी अवभी श्रीचन्द को कशमीरी पण्डित का चेला (विद्यार्थी) मानेंगे । यदि हाँ तो केवल नराकृति ही शेष हैं ।। पुनः मंत्र श्रीचन्द दास का कि (षट दर्शन का करे विचार जटाजूट आप निरंकार=रोमे रोमे नारायण देखे, जटा जूट अवर नहीं पेखे) (इस मात्रा को करे विचार, तत्वरुप आप निरंकार) एसी निहचल जटा जूट जमावै तत्वरुप होय आप दिखावै) यह मात्रा नानक निरञ्जन निर्वाण कहा— श्रीचन्द ने प्रगट कर लेहा) देखो मंत्र कैसे बनाये हैं, अव नानक पुत्रकी विद्वता भी साफ झलक पड़ी है । देखो कशमीरी पण्डित का शिष्य तो नहीं बना नहिं पढ़ा था परं यह वन्नों के चेले मियां दीनशाह सें उर्दू कुच्छ अवश्य पढ़ा था । एक उर्दू की किताव मियां दीनशाह ने लिखी थी, जिस में निर्वाण पन्थ श्रीचन्द को दिया था । जव श्रीचन्द की उर्दू गुरु मीयां दीनशाह सें कुच्छ गड़बड़ी होगई थी तो मीयां ने इसको निकाल दिया था, और लिख दिया था कि " निर्वाण भेष वाले हिन्दु सारे यवन किये हुये मेरे चेले हैं ।। और वे समस्त वाम पन्थी हैं. और दोज़ख जायेंगे ।।

तव यह गुरुमियाँ का शाप श्रीचन्द को अच्छे काम नहीं करने देता था । और ग्रन्थ साहिव मैं भी लिखा है, कि (पाप करे कर मुकर पावे भेष करे निर्वाण) इस प्रमाण सें सिद्ध हुया कि निर्वाण शब्द रूढीवृति सें मूर्ख शठ पापी का वाचक हें । अव उदासी इस तुक को पढ़ कर परमहंस वनते हैं । और जटाजूटों वालों को पक्के यवनों के चेले मानते हें । परं निर्वाण फिरका उदासी इन पुच्छ मुण्डों को मूर्ख जानते हैं ।। किसी हरनामदास साधु वेला वाले ने भी " गुरु उदास मत दर्पण " नामक पुस्तक मैं खूब उदासीयों की पोल खोली है । और श्रीचन्ददास के मंत्र भी लिखे हैं । देखो चोटी काटने का मंत्र (ऊ अं कुज़ादर आदमी कुज़ादर मुकाम—कुज़ादर वन्दगी कुज़ादर सलाम १ मादर दर आदमी खाक दर मुकाम—साहिव दर वन्दगी फकर दर सलाम २ क उन उस्त्राक उन पानी मुण्ड मुण्डाया किस की वाणीं— अलख उस्त्रा निरञ्ज पानी ३ शब्द ने मुण्डा सिदक ने मुण्डाया—गुरु का भेजाया नगरी आया ४ चोटी काटी कवन है साथी -ब्रह्मा विशन महां देउ साखी ५ साचा शब्द सची टकसाल चोटी काटी सीस ढाई वाल ६ चोटी काटी प्रेम सउ—त्रैलोक भयो विस्वासउ—नानक पूता श्रीचन्द वोले सतनाम कियो प्रकासउ ७ गु० उ० मत० द० पृ० ५१ मैं अव उदासियों का गुरु मंत्र भी निकल आया कि (सतनाम) का जप किया

परं देखो इस हजरत ने कैसे २ मात्रे घड़दिये हैं, कि मेरे चेले उदासी बुद्धि के शत्रु हैं, वे मेरे वाम मत को खूब रोशन करेंगे। इस लिये ताजे २ मात्रे बनाये थे॥ देखो प्रथम तो लिखा था कि, मेरी बोली गुरुमुखी है। परं अब मियां गुरु के मंत्र भी फारसी मैं लिख दिये। यद्वा अलीमस्तदीन के दादा सें फारसी पढ़ी होगी॥ क्योंकि उस के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध था॥ भला गुरुमुखी बोली लिख के फारसी बोलनी भूतावेशों का काम नहीं तो लालबुझक्कड़ों का भात है॥ उदासी पुनरुक्ति दोष को सम्भव है कि, गुरु के गले का हार समझते हों। परं मियां मन्थी के गुरु मियाँ दीनशाह ने तो साफ लिख दिया है, कि नानक पूता श्रीचन्द हम सें फारसी नहीं पढ़ा था, अन्यथा अपना नाम भी शाह वा दीनान्त धरता। अस्तु पूर्व रचना श्रीचन्द की साफ नानक पूता की पण्डिताई प्रगट करती है॥ कि-ऐसी रचना मूर्खों का मूर्ख महामूर्ख भी नहीं करता॥

॥ विचारणा ॥

प्र० एसे २ मात्रे क्यों बनाये ? उ० यवन और यवनों के चेले होने सें उदासियों का वेदों मैं अधिकार न था। इस लिये इन मियां पन्थियों ने वेद विरुद्ध अपने चेलों का धन हरन वास्ते नवीन मनघड़न्त मंत्रों की रचना की थी॥ प्र० क्या यवनों से भिन्न नानक पूता का भी अधिकार न था, उ० नहीं क्योंकि नानक पूता को मद्य मांसादि दोष युक्त होने सें नानक जी ने पतित कर दिया था। यांते नानक पूता श्रीचन्द का भी वेदों में अधिकार न था। और फूलशाह वा अबुबकरादि यवनों के साथ सम व्यवहार सें भी पतित था। और सिक्खों के रहत नामे मैं मुण्डा सिक्ख पतित माना है। इस लिये भी नानक पूता पतित था। क्योंकि प्रथम नानक पूता मंत्रों मैं केश धारने का उपदेश करता था, परं अन्त मैं "मुण्ड मुण्डाया" भी लिख दिया है॥ इस लिये जो यवनों का चेला बनें वा बनाये अथवा अपने मजहब सें पतित होवे उस का वेदों मैं अनधिकार है। और ये मात्रे भी रविवार के दिन गिरजा हाल कल्प स्थान मैं, नानक पूता ने बनाये थे। क्योंकि पहिले तो सिक्खी का मंत्र लिखा, फिर इस सें विरुद्ध मूण्डने का मंत्र लिखा क्या अब भी नानक पूता श्रीचन्ददास को, कोई मूर्ख पण्डित कहेगा वा अविद्या का भण्डार। देखो श्रीचन्द तो अपनी विद्या को साफ लिख गया कि मैं कुच्छ नहीं पढ़ा, हां गुरुमुखी कुच्छ आती है। परं इस अन्धे ने केवल श्रीचन्द की हासी ही नहीं प्रत्युत् मूर्खता भी खूब प्रगट करी

है । कि कश्मीर मैं पढ़ा था हाँ बड़ी बसी के दीनशाह सें उर्दू का कैदा अवश्य पढ़ा ज्ञात है । यदि नानक पूता कुच्छ भीं संस्कृत पढ़ लेता, तो इस अन्धे के समान वड़े ही अनर्थ करता ।। क्या श्रीचन्द मूर्ख था जो गुरुमुखी वौली लिखता है ।। परं इस श्रौ० के बनाने वाले ने तो श्रीचन्द को वड़ा पण्डित वा गुरु लिखा है । परं श्रीचन्द ने साफ २ लिख दिया है, कि नेत्र हीनों का उदास पन्थ मैं अधिकार नहीं है । क्योंकि चोरी करके भागने में वाधा दुश्चर है । देखो "उअ' कुजादर" उ नाम उदासी अ' नाम अन्धा कुजादर नाम कहां–अर्थात् अन्धा उदासी नहीं हो सकता ।। और श्रीचन्प के "चन्द्रभाष्य" को हम खूब जानते हैं । जो सब सें पहिले हमारे पास ही था—क्योंकि आप उदासा नाई छिंबे जाटों को ज्ञात नहीं है । क्योंकि मांस वा मदिरा पान करने वाले उदासियों का शास्त्र के मर्म का ज्ञान कैसे हो सकता है ।। परं इस श्रौ० के करता ने तो भोले भाले उदासियों को (अन्धस्यैवान्धलग्नस्य-विनिपातः पदे पदे) के अनुसार संसार सें विदा करना हीं चाहा है ।। परं उदासियो ?? स्मरण रहे कि (हते भीष्मे तथा कर्णे द्रोणे च निधनं गते—आशाबलवतीं राजन् शल्यो जेस्यति पाण्डवान्) इस महा-भारत की उक्ति सें, धृतराष्ट्र ही शेष बचेगा । पुनः पृ० श्रौ० ८३ मैं यति, परिव्राजक, शब्दों को चतुर्थाश्रमियों के वाचक माना है, और उदासी शब्दको सर्व का वाचक लिखा है ।। समीक्षा–सामान्य वाचक उदासी को विशेषवाचक यति परिव्राजक आदि शब्दों ने चतुर्थाश्रमियों सें भिन्न जो शेष हैं गृही डूम चमारादियों का वाचक निर्विवाद है ।। जैसे कि अश्वमेध प्रकरण में "अश्वस्य पदे जुहोति" इस विशेष्य श्रुति ने "आहवनीये जुहोति" इस सामान्य विधि को वाध कर–अर्थात् आहवनीयाधारकत्वसामान्य विधि को सश्वपदाधारकत्व विशेष विधि ने वाधकर अश्वपगपद्धति मैं ही होम का बाध करवाया है, तैंसे हीं चतुर्था-श्रम भिन्न का ही उदास शब्द से बोध अनिवार्य्य है ।। इस लिये निश्चय हुआ कि उदास शब्द चतुर्थाश्रमियों का वाचक नहीं है ।। क्योंकि (उदासीनाश्चरन्त्येते सूकरा वनशालिनम्) इस भ० के श्रौ० मैं सूकरों का वाचक उदास शब्द है ।। और (उदासीनाः खलु श्रान्ताः सीतामृगण-तत्पराः सुकपि भालवश्चैव निषेदुः पर्वताग्रेते) इस मैं भालु वानरों का वाचक उदासी शब्द आया है इस लिये अब भी उदासी लोग भालु वा वानर कुत्तों को पालते हैं, देखो हमारे पास बङ्गा मैं उदासियों के डेरे कुत्ते वा वानर पाले हुये हैं । जब संसार मैं भालु वा वानर आदि भी उदासी हैं । तो उदास पन्थ विराट् स्वरूप मैं क्यों न होवे ।। और

भागवत अ० ६ उ० स्कं० १० मैं (उदासीना वयं नूनं न स्त्र्य प्रत्यर्थ कामुका:) इस मैं श्रीकृष्ण जी ने रुक्मणी सें कहा था कि, हम भी गृहस्थों के समान स्त्री संतति आदि के चाहने वाले हैं॥ कोई उदासीन (चोर डाकु) तो नहीं हैं॥ इस मैं साफ लिख दिया है कि "न वयं नून मुदासीना:" हम श्रेष्ठाचारी हैं। कोई भ्रष्टाचारी उदासी तो नहीं हैं॥ सम्भव है कि, इस नयनविकल व्यक्ति ने श्रीभगवान् को भी वामी (उदासी) समझ लिया हो। क्योंकि भगवान् को भी तो "प्रसिद्धचौर: प्रथित: पृथिव्याम्" यद्वा=चोरयारशिखामणि:" "चौरोऽयं पापनाशनात्" "येनदादोऽपि समाहृतश्च" इन प्रमाणों से चोर तो अवश्य कहा है। परं पापापहरण द्वारा श्रीकृष्ण जी चोर हैं॥ कोई वाम मत के प्रवर्तक नहीं थे॥ इस लिये (बुद्धिमतां भागवते परीक्षा) "दशरामशरा:" यद्वा "मत पढ़ो निवाजें" का ही अनुकरण किया है, जैसे ग्रन्थ साहिब मैं पापियों को निर्वाण नाम के उदासी लिखा है। कि (पाप करे कर मुकर पावै भेप धरे निर्वाण) तैसे ही श्रीभागवत मैं भी लिखा है कि; (उदासीना वयं नूनं संप्रजा यान्ति मृत्यवे) इस मैं तो उदासी यमराज का नरक त्रयोदशी के दिन भौजन बनते हैं। यह स्पष्ट है॥ इस अन्ध-व्यक्ति गङ्गादास ने श्री० मैं लिखा है कि "सुदास शब्द भी उदास पन्थ का वाचक है"॥ परं (प्राप्ते कलियुगे घोरे सुदासा: पुण्यवर्जिता:— दुराचारता: सर्वे सत्यधर्म्म पराङ् मुखा:) ब्रह्म पु० उत्तर खण्ट इस मैं तो सुदास शब्द भ्रष्टाचारी पापी अर्थ स्पष्ट कर दिया है। सो अब कलियुगी साधु दुराचारी सुदास नामक उदासी बहुत हैं॥ और भागवत ११ स्कं० (उच्छिष्टभोजिनोदासा:) इस में भी दास शब्द डूमों वा चमारों का वाचक है। अब निश्चय हो गया कि, यह समस्त कर्म्मकर वा चर्म्मकारादि उदासी हैं। क्योंकि उदासियों के गुरु ने "श्रौतमुनिचरितामृत" मैं सुदासों को भी उदासी लिखा है। और कल्पतरु मैं भी लिखा है कि,—अतिथिसत्यकार वा श्राद्धादिक समस्त कार्य्य करने चाहिये यदि कोई अतिथि चोर वा दास नामा भी हो तो भोजन का दान अवश्य करना चाहिये यथा कि—(तदलाभेऽप्युदासीनं गृहस्थमपि भोजयेत्=) अतिथि के अभाव मैं गृहस्थी अतिथि को या उदासी (चौर्य्यरत) को भी अन्नदान लेने का अधिकार है, इस से निश्चय हुया कि उदास शब्द की प्रवृत्ति केवल नरों मैं पतित मात्र मैं वा नरेतर पशुप्रभृति जीवों मैं है॥ इसी लिये उदास पन्थ की प्रधानता है कि, जिस के पशु वा हिंसक जीव या डाकुओं का गरोह नेते हैं॥ इस ने समझा कि, मेरे तो नेत्र ही नहीं; लज्जा किस को होगी (श्रीडानयतथर्म्मिका) और इस ने

(उदासीनो गतव्यथः) गी० १२-१६-तथा (उदासीनवदासीनः) गी० १४-२३ इन्हों मैं भी उदास पन्थ का वाचक उदासीन शब्द को समझा है ॥ परं इस की सर्वथा भ्रान्ति है। क्योंकि गीता मैं कोई पन्थ नहीं बनाया जाता क्योंकि उदासीन शब्द तो गीता में गृहस्थी का बोधक है। कोई अनाश्रमियों का वाचक नहीं है ॥ यदि गीता में उदासीन शब्द भी उदास (डाकु) पन्थ परक होता तो, यति विद्वान् कभी भी न पढ़ते—इस लिये गीता चोरों की विद्या नहीं हैं ॥ श्रौ० पृ० ८६ में इस अन्धे ने लिखा है कि, " छोटे लड़के ने थोडे ही समय में चतुर्थाश्रम को छिन्न भिन्न कर दिया है " समीक्षा=इस का अर्थ यह होता है, कि नानक पूता तो वायु के सम चञ्चल स्वभाव छोकरा है। और चतुर्थाश्रमी मेघ के समान शीतल स्वभाव हैं अस्तु, यह विद्वेषाग्नि इस अन्ध व्यक्ति के अन्तः करण मैं ही निवास करे, परं तत्वविभूत्सु स्वयं विचार करें कि प्रथम इस ने लिखा था कि " उदास उदासी वा उदासीन या ब्रह्मसंस्थ यति संन्यासी प्रभृति शब्द चतुर्थाश्रम के ही वाचक हैं" परं अब अन्धा स्वयं पृ० ८६ मैं नानक पूता द्वारा चतुर्थाश्रम का खण्डन करता है देखो उदासियो! जिस अन्धे की आप दव उठाते हों, उसने चतुर्थाश्रम का खण्डन कर आप को " चौथे पौड़े के चेले बना दिया है। चौथा पौड़ा तो डूमों का होता है। इस लिये सब उदासी चमार डूमों के चेले हैं ॥ पृ० ८६ श्रौ० के लेख सें ज्ञात हुया कि उदासी लोग अब भी चतुर्थाश्रम से राग नहीं करते, प्रत्युत् खण्डन करके "चौथे पौड़े वाले " नानक पूता के चेले अनाश्रमि जो डूमादि हैं। तिन्हों से राग रखते हैं ॥ यातें उदास केवल डूमों का वाचक है ॥ और (उदासी नानामपि चैवंसिद्धः) वे० द० सू० अ० ३-पा ४-२८ मैं भी लिखा है कि, "उदासीनानाम्-कर्मकराणाम्—स्वदारे भोजने धने सन्तुष्टानाम्— साधक ग्रहीणाम्— साधुचरितानामपि चैवं—संन्यासिकल्यज्ञानस्य सिद्धिभवेदपि " उदास शब्द अल्पश्रुतों का वाचक है। इस लिये व्यासजी के लेख को देख गङ्गादास ने चतुर्थाश्रम के खण्डन द्वारा अपना "चौथा पौड़ा " स्वीकार किया है। (नहिकस्तुरिको मोदः शपथेनाभि भाव्यते) क्या कोई खशबू को छिपा सक्ता है ॥ लालबूझक्कड़ की बुद्धि पहिले अपने को चतुर्थाश्रमी लिखना फिर चतुर्थाश्रम का खण्डन करना, क्या उदास पन्थ के प्रवर्तक सभी नानकपूता के समान केवल गुरुमुखी बोली वाले हैं ॥ बालकराम उदासी ने सांख्यतत्वकौमुदी के टीका मैं कारिका ७ पृ०६७ पं १५ मैं लिखा हैं कि " अन्धो विद्यामानं रूपं न पश्यति शब्दञ्च न शृणोति ". इतिशेषो ज्ञयः) अर्थात् अन्धा रूप को तो नहीं देखता-परं

शब्द को भी नहीं हठ सें सुनता-अन्धे उदासी हठी खूब होते हैं। यह वास्तव बालराम का कृत हैं॥ पुनः श्रौ० पृ० ८५ मैं लिखा है। कि "उदासी शब्द ऋषि मुनि तथा सेवक इन तीनों का वाचक है! समीक्षा हम लिख चुके हैं। कि सामान्यवाचक उदासी शब्द की विशेष यति संन्यासादि शब्दों ने ऋषि मुनियों सेवाधकर केवल उदासी को सेवक परक ही स्थिति प्रदान की है। वास्तव मैं इस अन्ध व्यक्ति को भी उदास का अर्थ सेवक ही इष्ट है। क्योंकि उदासी अधिकतर सिक्खों की सन्तान है॥ और इनके नाम भी दासान्त ही होते हैं कि, रत्नदास हरनामदास, गङ्गादास, रोटीदास, इत्यादि ज्ञात होता है कि, गङ्गादास ने रुढ़िवृत्ति से उदासी सेवकों का वाचक माना है, यद्यपि उदासी शब्द यौगिक वृत्ति सें चतुर्थाश्रमी संन्यासियों का भी वाचक हो सक्ता है, तथापि यति प्रभृति शब्दों को बाधक होने सें, उदास शब्द चतुर्थाश्रमियों का वाचक नहीं हो सक्ता—तथा (योगद् रुढ़ि विलीयसी) इस न्यास सें भी रुढि उदासी शब्द दासों का ही वाचक है। परं रुढि अर्थ में प्रवृत शब्द को यौगिक अर्थ का वाचक मानना केवल मूर्खता ही नहीं है॥ इस मैं शठता द्वारा शास्त्रों का गला भी खूब मर्दन किया है। धन्य है अन्धे की अन्ध बुद्धि को, जो नानक पूता बुद्धि का भी दर्पन बन रही है॥

पुनः श्रौ० पृ० ८६ मैं लिखा है कि " विधिवत् चतुर्थाश्रम को ग्रहण करने वाला ही उदासी साधु होता है " अब विचारना चाहिये कि उदासी सेवक सब पतित ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि उदासीयों ने कभी भी विधिवत् संन्यास नहीं किया, यदि किया है। तो लिखो तुम किस यति के चेले हो। यदि कहो कि हम सब उदासी भक्त भगवान् गिरिजी के चेले हैं। सो आपका कथन मिथ्या है। क्योंकि भक्त भगवान् गिरि का तो चेला श्रीचन्द था, उसके चेले यह निर्वाण हैं। वे समस्त भक्त भगवान् गिरि जी के चेले हैं॥ तिन्हों ने तो विधिवत् कर्म्मों का संन्यास किया होगा॥ परं वे समस्त अपनी मूर्खता सें, अपने को अब उदासी कहलाते हैं॥ वास्तव में वह उदासी (सेवक) नहीं हैं॥ क्योंकि गिरियों के चेले तो सर्व के पूज्य होते हैं। दास (सेवक) नहीं होते॥ इस अन्धे के लेख सें सब उदासी पतित हैं। क्योंकि विधिवत् कर्म्मों का त्याग नहीं करते" क्यों जी बाबा लोगो अब भी अन्धे को गुरु बनायोगे? यदि हां तो डाकू सेवक बनों चतुर्थाश्रम को तो नानक पूता ने ही छिन्न भिन्न कर दिया अब किस आश्रम मैं जायोगे॥ क्योंकि (अनाश्रमी न तिष्ठेत्) के अनुसार अन्तज जाति मैं हीं जायोगे॥ वास्तव में नानक पूता भगवान् गिरि का चेला बन कर भी

मद्य मांसादि खाता रहा, गुरु (भगवान् गिरि) के कहने पर भी बाज़ न आया—तो भगवान् गिरि ने हठी व्यसनी जान कर छोड दिया था ॥ इस ने तब संन्यास (चतुर्थाश्रम) का न जान कर वाम पन्थ चलाया था ॥ यदि कहो कि बाबा श्रीचन्द ने अपने बनाये हुये मात्रों में, चेले बनाने का मंत्र लिखा है, हम उदासी उसी विधि सें मात्रा पढ़कर चेले होते हैं ॥ जैसे कि (उ अं कुजादर) (षट् दर्शन का करें विचार) उ अं सोम श्रीचन्द के माथे सोहे) श्रीचन्द के शिर पर सोम (शराबकी हंडी) उ अं-सर्वदा विद्यमान रहती थी ॥ (युगत का टोप गुरुमुखी बोली) (श्रीचन्द मद्यपा जात न कोये) (वेद कितेव नहीं हम मानें) (ग्रन्थ साहिबका जाप जपायें) (यवन बनन में नहीं कोउ खेदा) (मात पिता हम को दुःख देता) (हम वन्नों के भक्त निकारे) (गुरु हम के निज़ यवन विचारे) इत्यादिक स्वयं मात्रे नानक पूता के तुण्ड सें निकले हैं क्यों जी (ग्रन्थ साहिब का जाप जपायें) इस मंत्र को पढ़ के, यदि उदासी होते हैं । तो अब ग्रन्थ जी के जाप को छोड़ कर, क्या हीर का जाप जपायोगे ॥ धन्य हैं ऐसे मात्रे जो सर्वथा मूर्खता गर्भित हैं ॥ क्या अब भी नानक पूता को, कोई मूर्ख विद्वान् वा साधु कहेगा ॥ यदि हाँ तो (बुद्धिहीनो हि कीदृशः) परं वामी उदासी इस भूत जड़े के मात्रों को अवश्य नवनीत कल्प जानेंगे ॥ पुनः पृ० ८६ श्रौ०में (सनकश्च सनन्दश्च सनातनमथात्मभुः-सनतकुमारश्च मुनीन्-निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः) भा० स्कं ३—अ० १२ इस में मुनियों (संन्यासियों) से प्रथक् इन चारों का ग्रहण करने सें ये चारों संन्यासी न थे ॥ किन्तु जैसे श्रीचन्द ने नानक का कहना नहीं माना था—तैसे इन चारों ने भी अपने पिता ब्रह्मा का कहना नहीं माना था ॥ देखो भा० स्कं० ३, अ० १२ में कि (तान् बभाषे स्वभुः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः ?? ते नैच्छन्तस्तस्य कथनम्) इस से स्पष्ट है, कि पिता की आज्ञा भङ्ग करने सें चारों श्वानकल्प घर २ मांगते ही फिरते थे ॥ इस लिये ये संन्यासी न थे । किन्तु लोगों को दुःखित करते फिरते थे । इस लिये ब्रह्मा ने इनका घर से वहिष्कार कर दिया था । शं० उपनिषदों में नारद को सनत्कुमार ने ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया था, इस लिये संन्यासी थे, (समा) श्रात प्रयोगों में तो "सनत्कुमार" केवल गुरु का ही नाम है । किसी व्यक्ति का नाम विशेष नहीं है ॥

अतएव ब्रह्मा का पुत्र जो सनत्कुमार था, वह तो अति शुद्र था । इस का अनुपद में ही निरुपण करेंगे ॥ अब ऋग्वेद के मुनि शब्दों का निर्णय किया जाता है, कि किस परक हैं ॥ जोकि अन्धे ने पृ० ८८

श्रौ० में लिखे हैं कि उदास के बाचक मुनि शब्द हैं। द्रप्सो भेत्ता पूरां शाश्वतीना मिन्द्रो मुनींनाम् सखा) ऋ० म०८ सू० १७ मं० १४ इस सें तो मुनि शब्द केवल वेद शास्त्र के ज्ञाता का ही वाचक है। (मन्तारो वेदतत्वावगन्तारो मुनयः) इस व्युत्पत्ति से भी गृही (यज्ञ कर्त्ता) का ही वाचक हैं॥ क्योंकि इन्द्र देवता केवलगृहस्थियों से ही मित्रता कर्त्ता है। संन्यासियों से नहीं, संन्यासी लोग याज्ञ नहीं करते-इसलिये इन्द्र यतियों से मित्रता क्यों कर सकता है॥ क्योंकि— (याज्ञप्रियोहिमघवा) इस यजुर्वेदीय कृ० सं० खं० ६, में १६ में साफ लिख दिया है कि, यज्ञ विकलों का मित्र नहीं और (अरुन्मुखान् यतीन्) इस मंत्र में हम लिख चुके हैं कि, यतियों का तो शत्रु है॥ यदि कहो कि इस मंत्र में इन्द्र नाम ईश्वर का है, ईश्वर तो नितान्त यतियों का ही मित्र है । सो यह कथन भी किसी मूर्ख जाट वा शास्त्रान्ध का ही है। क्योंकि इस सूक्त का देवता ही इन्द्र लिखा है। (अस्य सूक्तस्य १७ देवोऽपि मघवा संप्र-कीर्तितः) आर्षीनु० अ० १०—श्लो० ५—इस प्रमाण सें भी इन्द्र ईश्वर का नाम नहीं है॥ यदि यह अन्धा हरिप्रसाद के "वेदसर्वस्व" निबन्ध को भी पढ़ लेता तो भी देवता ज्ञान हो जाता॥ इस अन्धे ने जो म० ६ सू० ५६ मं० ८ ऋ० इस में मंत्र ८ आठ के नाम सें ऋग्वेद का मंत्र लिखा सो मिथ्या लिखा है। क्योंकि ५६ सूक्त में ८ आठ मंत्र ही नहीं हैं, किन्तु छे ६ मंत्र हैं । और ऋ० म० १० सू० १३६ मं० २ (मुनयो वातरशनाः) तथा (मुनिर्देवस्य देवस्य सौकृत्याय सखा हितः) मं० ४ सखाथ देवोषितो मुनिः) मं० ५—इन ऋग् मंत्रों में भी मुनिपद सप्त वातरशनायों (सर्वदान दक्षिणायाज्ञ करने वालों) का ही वाचक आया है। किसी यति वा ब्रह्मचारी का वाचक नहीं॥ यदि वादीतोष-न्याय सें मुनि पद को यति परिव्राजकों का वाचक मान भी लें—तो भी सेवकों का वाचक नहीं हो सकता॥

पुनः पृ० ६० में अन्धव्यक्ति ने "श्रीगोविन्दपाद को स्मार्त्त संन्यासी माना है। और मुनि ब्रह्मसंस्थ शब्दों को वैदिक माना है। तथा यति परिव्राजक शब्दों को स्मार्त्त लिखा है। और संन्यासी शब्द तो श्रुति स्मृति तथा सूत्रों में खोज करने पर भी नहीं मिलता" समीक्षा= संभव है कि, श्रीगोविंदपाद का सिद्धान्त अन्धे की समझ में न आया हो, इस लिये स्मार्त्त लिख दिया है। परं स्मरण रहे कि उदासी बाबे तो न स्मार्त्त हैं न श्रौत हैं, किन्तु अपने गुरु नानक पूता के मनघड़न्त मात्रों को बोल २ कर चुटिया काट कर अपने गन्दे भाव भोले भाले लोगों में फैला रहे हैं॥ क्योंकि उदास पन्थ तो किसी भी निबन्ध में नहीं आता,

हाँ सिक्खोंके पुस्तकों में तो भरमार भरा हुआ है । सोउस स्थान में उदास शब्द का अर्थ है । पथ भ्रष्ट ।। किसी का मत है कि, "पथभ्रष्ट" का अर्थ है, भली प्रकार पक्का हुआ, सो हम उदासी बावे पथभ्रष्ट (पथ पक्के) हैं । सो रेका प्रकृता संगित है । क्योंकि यहां पथ पतितों का नाम "पथभ्रष्ट" उदासी है । यदि गङ्गादास उदासी शब्द को किसी भी निबन्ध में उदास पन्थ का वाचक दिखाये तो हम सर्व संन्यासी लोग कुच्छ सुमति इसको प्रदान करेंगे ।। ऋषि मुनि वा ब्रह्मसंस्थ शब्दों को श्रौत मानना, और यति परिव्राजक शब्दों को स्मार्त्त लिखना, इस में मूर्खता ही नहीं, प्रत्युत् लोगों को धोखा देना भी दृष्टचर है । क्योंकि जैसे मुनि और ब्रह्मसंस्थ शब्द वेद उपनिषदों में आते हैं ।। वैसे संन्यास वा यति परिव्राजक शब्द भी वेद उपनिषदोंमें खूब ठसाठस्य भरे हुये हैं । हम इन बुद्धि के रिपुयों को पूर्व "संन्यास ही वैदिक है" इस प्रकरण मैं दिग् दर्शन दर्शा चुके हैं ।। और जैसे वेदों मैं संन्यास, यति, परिव्राजक, मुनि, मौनी, ब्रह्मसंस्थ, चतुर्थाश्रमी, आदि शब्द केवल संन्यास (चतुर्थाश्रम) के वाचक हैं । वैसे उदास शब्द जिन निबन्धों में आया है । वहां केवल पथ भ्रष्टों का ही वाचक आया है ।। इस लिये पूर्वोक्त सप्त शब्द संन्यास्यादि समानार्थक ही हैं । क्योंकि वे केवल चतुर्थाश्रम के ही वाचक हैं ।।

संभव है । कि जहां वेदों में संन्यास शब्द आया है । वहां पर इन के मूर्ख पण्डितों ने इस को न सुनाया हो । परं वेदों मैं शूद्रों का अधिकार नही है । इस लिये वेदों मैं संन्यास शब्द न सुना हो, परं स्मृतियों वा पुराणों या इतिहासों का भी इन दासों को ज्ञान नहीं है । अन्यथा " संन्यास शब्द खोजने पर भी कहीं नहीं मिलता " यह लेख मूर्खता का न लिखता ।। हम समस्त वेद शास्त्रों मैं संन्यास को सिद्ध कर चुके हैं । परं उदास शब्द तो मायावी के जूते का शशक है ।। और विश्वेश्वर कोष के अनुसार भी उदास का अर्थ पथ भ्रष्ट ही है । कि उत् अविहितकर्म्मणि—आसः—रमणमिति —उदासः सोऽविहितशास्त्र विरुद्धक्रिया भवत्यास्मन्निति—उदासी—उदासीनो वा) और चन्द्रभाष्य पृ० २४२ मैं स्पष्ट लिखा है कि, (उदासीना वयं भ्रष्टाश्चौरकर्म्म समारतः) अर्थ—हम उदासी मद्य मांस सेवी केवल पथभ्रष्ट ही हैं ।। और चोरी पेशा करते हैं ।। क्योंकि शुभक्रिया में हमारा अनधिकार है । किसी अल्पश्रुत का कथन है कि (उन्नाम ब्रह्मणि—आसीनं—रमणं येषां त उदासीनाः) इस से तो उदासी भी चतुर्थाश्रमी हैं । सो यह कथन चन्द्र भाष्य सें विरुद्ध होने से प्रमाण नही है । उदासियों के गुरु तो

चन्द्रभाष्य में पदभ्रष्ट लिखे हैं॥ और उत्—भ्रष्टाणि—इस व्युत्पत्ति में कोई प्रमाण भी नहीं है। परं चन्द्रभाष्य की वा विश्वेश्वर कोष की व्युत्पत्ति में तो खूब प्रमाण दे चुके हैं॥ किउत् शब्द केवल अविहित कर्म्म में रुढि है। जैसे कि (उद्धर्म्म मधर्म्मश्च) (उत्पथप्रतिपन्नस्य) इत्यादिक प्रमाणों से उत् शब्द पथभ्रष्टों का वाचक निर्विवाद है॥ और "उन्नामेनसः" इस यजुः प्रतिशाख के प्रमाण से भी उत् शब्द का अर्थ " एनस " नाम पाप है॥ इस लिये पैङ्गी ने भी (येनोन्नामेनसस्तेनोन्नाम संपृक्तहानम्) खं० ५ सं० २ म० १ इस प्राति शाख वा पैङ्गी के प्रमाण से यह (उन्नाम पाप कर्म्मणि—आसनं सुरमणं येषां ते—उदासीनः) व्युत्पत्ति होती है॥ पुनः पृ० ६२ में अन्धे ने स्मृतियों को अप्रमाण मानकर पुनः स्मृतियों के प्रमाण भी दिये हैं। इस विरोधी लेख से इस की मूर्खता ही नहीं-किन्तु हठता भी खूब है। उदास पन्थ की स्मृतियों में खूब पोल दर्शाई हुयी है। इस लिये अप्रमाण लिख दीं हैं। परं इस अन्धे को यह नहीं स्मरण हुया कि गीता भी तो स्मृति ही है॥ जिस को अन्धे ने नवनीत के समान, प्रमाण माना है॥ अत् एव स्मृतियों को अप्रमाण मान कर पुनः प्रमाण के लिये उघृत कर ने में अन्धे की अल्पश्रुतता सर्व का दृष्टचर है॥ पुनः पृ० ६५ श्रौ० में श्लोकों का पाठ भी व्यत्यय कर दिया है। तो भी उदासी शब्द का अर्थ निरपेक्ष नहीं सिद्ध हुया, यथार्थ पाठस्तु (उदासीनाः स्थिता ये तुन्युदासीना भवन्तु ते—निरपेक्षाः स्थिता ये तु निरपेक्षा भवन्ति ते) अत एव दोनों का अर्थ विभिन्न ही है। जो उदासीन (चौर भावना से स्थित हैं, वे उदासीन (चौर) हैं॥ और जो निरपेक्षा (विरक्तता) से स्थित हों वे निरपेक्ष हैं॥ इस में तो (भक्ष्यतेऽपि लशुनेन शान्तो व्याधिः) के अनुसार अन्धे ने चोरी भी करी, परं ढोल की पोल पोप पन्थी उदासियों की खुल ही गई॥ पुनः पृ० ६७ श्रौ० में इस अन्धे ने गरुड़पुराण के ५६ अ० से उदासियों के दो भेद किये हैं। सो सर्वथा पुराणानभिज्ञता के सुचक हैं॥ क्योंकि निरुक्त पुराण के अ० ५६ में तो गृहस्थों के भेद हैं, क्योंकि गृहस्थी दो प्रकार के होते हैं, एक शास्त्रोक्तव्यवहार करने वाले, दूसरे शास्त्र विरुद्ध चौर कर्म्म करने वाले। बस इन दोनों का ही कथन किया है। परं पथभ्रष्ट उदासियों का कथन नहीं है। प्रत्युत साधकों के भेद अवश्य हैं॥ पुनः पृ० ६८ श्रौ० में अन्धे ने अपना उदासी पन्थ सिद्ध करने वास्ते (अभ्यागतानुदासीनान् गृहस्थः परिपाल येत्) यह महा निर्वाण तन्त्र का प्रमाण दिया है, सो तो सर्व तन्त्रों में केवल वाम मत का ही विधान है संभव है कि यहां पर उदास शब्द पथ

भ्रष्टों का ही वाचक हो ।। अन्धे के कथनानुसार इस वाम मत के ग्रन्थों में उदासीन शब्द पथभ्रष्टों (दासों) का वाचक है। तो भी उदासी स्वयं वामी बन गये, इस वाम मत के प्रमाण सें तो गङ्गादास का भी नानक पूता के समान उदास पन्थ में, खूब तुरला उड़ता होगा, श्लोकार्थ=गृहस्थी वाम मत सें शून्य को भी वाम मतानुयायी पथभ्रष्ट अभ्यागत उदासी की भी सेवा करनी केवल अन्नजल प्रदान द्वारा गृहस्थी मात्र का परम कर्तव्य है। क्योंकि अतिथि किसी भी मत का हो सेवा अन्नजल का तो अधिकारी हैं सेवाकृत=सम्भव है कि वामी उदासी की सेवा करने पर वह वामी अतिथि (उदासी) भ्रष्टपन्थ वाम मत को छोड़ कर शुद्ध सनातन मत का भक्त बनकर अपने जीवन को परमादर्श बना ले ।। देखो " आत्मा स्वरूप गुरु मण्डल वा बालकराम, था अरविन्दानन्द (कमलदास) आदि २ इस भ्रष्टपन्थ वाम सें निकल कर शुद्ध (संन्यासी) परमहंस नाम सें अनुराग रखते थे योगदर्शन के हिन्दी टीका में आत्मास्वरूप ने अपने को वामी न मानकर संन्यासी लिखा है ।। और बालकराम ने 'दयानन्दी पोल' में अपने को संन्यासी माना है। और लिख दिया है कि, आश्रमतो चार ही हैं पञ्चमाश्रम तो कौलिकों का है। इस लिये हम वामी (उदासी) नहीं किन्तु ~~शुद्ध~~ शुद्ध संन्यासी हैं ।। परं वर्त्तमान के उदासी तो वामी ही हैं, क्योंकि इन्हों ने स्वयं वामी बनने वाले वाम मत के तन्त्रों का प्रमाण दिया है कि हम उदासी वाम मत के अतिथि हैं ।। पूनः पृ० ९८ श्लो० में उदास पन्थ की सिद्धि पुराणों से करते हैं कि हम भी संन्यासी हैं, समीक्षा=पूर्व इस अन्धे ने श्रौत बनने की प्रतिज्ञा की थी, सो अब संन्यासियों के सामने कर्पूर हो गई है। क्या सिंहों के विद्यमान हुये कभी शृंगाल राज कर सक्ते हैं ।। बस अब गङ्गादास की अकल काम नहीं करती क्योंकि (यवनः पलायते सततं पलायते यवनालयम्) अर्थात् " काजी की दौड़ मसीत तक " परं वाम मत के निबन्धों को छोड़ कर किसी भी निबन्ध में उदास पन्थ को नहीं लिखा है ।। इस अन्धे ने तो वैदिक प्रतिज्ञा की थी, परं अब तो केवल वाम मत का या पुराणों का ही आश्रय लिया है ।। हम पुराणों की व्यस्था "चतुर्वेद सिद्धि मीमांसा " में कर चुके हैं कि पुराणों में निरपेक्ष गृहस्थी का वा सापेक्ष गृहस्थी का नाम उदास शब्द सें शब्दित किया गया है, कोई पथ भ्रष्टों का नाम नहीं है ।। अत एव वैदिक भी कैसे बने वेद में तो इन दासों का बहिष्कार ही किया है ।। पुनः पृ० १०० श्लो० में जिन स्मृतियों को अप्रमाण लिखा था, अब उन्हों का ही प्रमाण दिया है। क्यों न लिखे स्वार्थ तो गधे को भी बाप बनाता है। देखो इस अन्धे ने

यमोक्ति का पाठ भी बदल दिया है । तो भी पोल खुल ही गई ॥ असली (अज्ञानिनो द्विजा येच येचा विद्या[illegible] परंरताः उदासीना हि गच्छन्ति धनार्थे च हता नराः) अर्थ =जो पुरुष धन न कमा सके वह अज्ञानी अविद्या की मूर्ति भले ही उदासी (पथभ्रष्टी) वन जाये, क्योंकि वह उदासी (वामी) तो प्रथम ही था, इस लिये वह घर को छोड़ दे, अन्यथा अपनी वा औरों की सन्तान को भी वामी (उदासी) बनादेगा । यदि अब भी उदासी अधिक हैं तो, देश भक्ति और देव भक्ति का यह स्वरुप होगा कि देश के अन्तिम शकार और देव के अन्तिम वकार का संमेलन होने पर " शव " सिद्ध होगा ॥ जिस का अर्थ हुआ कि " शवभक्ति " वैसे ही उदास के सकार और वाम को मकार का संमेलन होने सें "सम" शब्द सिद्ध होगा, जिस का अर्थ होगा कि वामी और उदासी दोनों एक (सम—समान) ही हैं ॥ पुनः पृ० १०८ में (प्रमत्तो ऽहं महा भाग! विद्यया तपसा धनैः—हताशा च गुरोः कृत्वा प्राप्तवानदर्शी गतिम्) इस बृहन्नारदीय पु० का पाठ इस अन्धे ने सर्वथा बदल दिया है, इस लिये अलीक पन्थी अपने उदास (वाम) पन्थ को पुनः विराट् स्वरुप में करना चाहिते हैं ॥ इस श्लोक का पाठ जैसा हमने लिखा है । वैसा ही चन्द्र भाष्य के पृ० १०३ में और विश्वेश्वर भाष्य के पृ० १०४ में लिखा है। इस लिये गुरुयों का निरादर करके अन्धे ने अपना मत अलीक सिद्ध किया है ॥

सम्भव है कि यदि "व्रतखण्ड" जैसे थोथे पोथे न होते, तो अन्धे का (श्रौतमुनिचरितामृत=श्रौतमुनिचरितामिष) आधूरा ही रह जाता अस्तु ॥ पुनः पृ० ११२ श्रौ० में अन्धे ने लिखा है, कि "मंत्र द्रष्टा ऋषियों के द्वारा वेद मत के प्रचार सें पहिले ही, सनत्कुमार ने उदास मत का खूब प्रचार किया था ॥" समीक्षा=इस लेख सें निर्विवाद है, कि सनत्कुमार न ऋषि था न मुनि ही था ॥ और वेदों के प्रचार सें पहिले ही, उस ने ऋषि मुनियों से विरोध कर वेद विरुद्ध अपना मनघड़न्त वाम मत चलाया था ॥ क्योंकि जब ऋषियों द्वारा वेद का प्रकाश न था' तब केवल वाम पन्थ का ही प्रचार था ॥ क्योंकि राजशासन के अभाव में जैसे कि प्रजा वागी ही नहीं होती, प्रत्युत् अनर्थ भी खूब किया करती है तैसे ही वेद शासन के अभाव में भी बहुत अनर्थ ही होते हैं ॥ सो आज तक उदासियों में जागरुक हैं ॥ यह वही सनत्कुमार है, जो ब्रह्मा जी का पुत्र था । क्योंकि वैदिक सनत्कुमार तो केवल गुरु का ही नाम है । किसी व्यक्ति बिशेष का नहीं । जैसे कि (सोऽनत् निश्चयेन कु—अज्ञानं मारयति बिनाशयति यः सः सनत्कुमारः) (गुरुः) वैदिक प्रयोगत्वात्

प्रथमान्तस्य शकन्ध्वादेरकृतिगणत्वाच्च सर्वदा टेर्लोप:) यह अर्थ चन्द्रभाष्य पृ० १०३ मैं तथा बिश्वेश्वर भाष्य पृ० १०४ मैं किया है, परं विश्वेश्वर भाष्य मैं तो (टे: पररुपम्) इतना विशेष षाठ है, सो अच्छा भी है, क्योंकि चन्द्रभाष्य में तो अशुद्ध ही है ॥ उदासियों को अब हलुवा अच्छा नहीं लगता इस लिये अपना आदि पुस्तक ग्रन्थ साहिब को छोड़ कर पृ० ११४ श्लो० मैं श्री वेद भगवान् को ही इष्ट लिखा है॥ ज्ञात होता है कि जैसे वामियों ने प्रथम इष्ट ग्रन्थ साहिब को गन्दा किया है। तैसे अब वेदों को भी विदा कर अपनी वामता की पताका फहरानी चाहते हैं। अन्यथा अपने प्रथम इष्ट को न छोड़ते (ग्रन्थ साहिब का जाप जपाये) क्या यह नानक पूता का मंत्र चेले बनाने का इस अन्धे को अच्छा नहीं लगता ?

अन्यथा प्रथम इष्ट न छोड़ता सिक्खों ने डेरे छीन लिये तो वेद की शरण आये—अब वेदोक्त कर्म्म धर्म्म करने पड़ेंगे, तो पुन: नवाङ्क के दृष्टान्त से निज स्वरूप वामता को ही प्राप्त होंगे॥ देखो भा० स्कं० ३ अ० १२-३-४ श्लो० मैं तथा ब्रह्म वै० पु० में सनत्कुमार को सनक, सनन्द, तथा सनातन से छोटा लिखा है। और पृ० १४६ श्लो० मैं इस अन्धे ने भी यह बात मान ली है, जिस ने अधिक देखना हो, तो हमारी चन्द्रभाष्य समीक्षा मैं देखलें॥ पुन: पृ० १५३ श्लो० मैं लिखा है कि "सनत्कुमार अपने पिता (ब्रह्मा) से उपदेश सुनता था। क्योंकि पिता को शिष्य और पुत्र में कुच्छ भी भेद नहीं होता है॥" समीक्षा—भला जब पिता से उपदेश लेकर सनत्कुमार आप का गुरु बना था, तो नानक सें नानक पूता उपदेश लेकर पथभ्रष्टों का गुरु क्यो न बनेगा॥ और नानक का उपदेश श्रीचन्द को देना आप के पुस्तकों में बहुत मिलता है, जैसे कि "नानक प्रकाशादि" मैं। पुन: पृ० १५४ श्लो० मैं,अन्धे ने लिखा है कि, सनत्कुमार सें प्रथम उदास पन्थ न था, सो तो हम भी मानते हैं, कि सनत्कुमार तो दूर रहा प्रत्युत् नानक पूता से पहिले भी यह भ्रष्ट उदास पन्थ न था॥ किन्तु हमता कहेंगेकि यह उदास (मियां) पन्थ अभी कल का छोकरा है, सो सूकरों के बच्चों के समान छोटा हो अच्छा लगता है, यदि कुच्छ काल वड़ा हुआ तो नतमस्तक शकृत् को ही प्राशन करेगा॥ अब यदि कोई उदास पन्थ को अनादि कहे तो, उस की काली कोरी करतूत मूर्खता गर्भित ही सिद्ध होगी। क्योंकि उदास पन्थ को नवीन गुरु अन्धा सनत्कुमार सें पहिले अत्यन्ताभाव मान चुका है। सो ऐसे उत्पथ प्रतिपन्न श्रीचन्द वा सनत्कुमार ने अपनी शूद्रता सें, शास्त्र विरुद्ध उदास पन्थ का पुन: लोगों में प्रचार किया था। सो अब दोनों

का गुरु अन्धा भी प्रवचन कर्त्ता है, परं ये चारों सनक, सनन्द, सनातन, सनत्कुमार-क्रम सें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र ही थे, सो निश्चय है कि, उदास पन्थ इस शूद्र सनत्कुमार से ही चला हुआ इस अन्धे ने माना है ॥ क्यों न माने यह हजरत स्वयं भी तो शूद्र हो था, और चन्द्रभाष्य पृ० १६ में श्रीचन्द को भी शूद्र ही लिखा है, कि (शूद्रोऽयंरमाचन्द्रः पितुराज्ञां विवर्जिता) "हम को पिता की आज्ञा न मानने पर सर्व लोग शूद्र ही कहते हैं ॥" सो जाति का परिवर्तन नहीं हो सकता—इस लिये वर्तमान के पथभ्रष्ट भी उदासी केवल शूद्रों को ही अधिक अपने भ्रष्ट पन्थ में भरती करते हैं ॥ सो भी चन्द्रभाष्य पृ० १५ में लिखा है कि (शूद्रप्रिया उदासीना वामकर्म्मसमारताः) और एकबार "ब्रह्मा जी की सभा में, हंस पक्षीरूप से श्रीराधाधव भगवान् पधारे थे, तब सनत्कुमार को उपदेश दिया था । यह वार्त्ता पृ० १५७ में श्रौ० मु० के अन्धे ने भी लिखी है । इस प्रमाण सें सिद्ध हुआ कि सनत्कुमार शूद्र था, इस लिये भगवान् को नर रूप सें पक्षी का रूप धारण करना पड़ा था । क्योंकि शूद्रों को वेदादिक सच्छास्त्रों के अधिकार का श्रीचरणों ने स्वयं ही निषेध किया है ॥ अन्यथा नीतिज्ञ पथ प्रदर्शक भगवान् अपनी नीति को कैसे उलंघन करते ॥ एक बात यह भी थी कि, ब्रह्मा की दुःखित ध्वनि (उपासना) सें भगवान् ने उपदेश तो अवश्य करना था, परं शूद्रों का निश्चय नहीं होता, इस लिये पक्षी रूप सें कुच्छ समझाया कि (साधुर्भव साधुर्भव पित्रा रोषञ्च माकुरु) तब सनत्कुमार ने कहा (गच्छ गच्छ न त्वं ब्रुहि न हानि मम वामतः) भगवान् सर्वज्ञतया जानते थे कि, यह शूद्र वामी मेरा उपदेश नहीं मानेगा, परं ब्रह्मा जी की उपासना का फल भी अवश्य प्रदान करना है । इस शूद्र का उद्धार तो सात जन्म में होना है । मैं दर्शन नहीं इस पापात्मा को देनें । इस लिये भी पक्षी रूप सें भगवान् पधारे थे ॥ यदि कोई कहे कि यहां हंस किसी पक्षी का नाम नहीं है किन्तु यहां हंस तो परम हंस संन्यासी का नाम है इस लिये यति रूप सें उपदेश सनत्कुमार को दिया था पक्षी रूप से नही दिया ॥

सो यह कथन भी वादी का केवल अज्ञान विलसित ही है । क्योंकि (चतुर्विधाभिज्ञवस्तु प्रोक्ताः सामान्य लिङ्गिनः—तेषां पृथक् पृथग् ज्ञानं वृत्ति भेदाः कृतश्च तत् १ कुटीचरो, बहुदको, हंसश्चैव तृतीयकः=चतुर्थः परमहंसश्चयः पाश्चात्यः स उत्तमः २) इस में हंस का तृतीयः विशेषण दिया है और परम हंस का विशेषण चतुर्थ है ॥ इस लिये केवल हंस शब्द तो पक्षी का ही वाचक है ॥ संन्यासी का नहीं,

और पुराणों में तो, हंस शब्द का अर्थ स्पष्टतया पक्षी ही किया है, यथा—(विवरो हंसो ज्ञेयः) ग० पु० (हंसः क्षीरमिश्राम्बुदः) वि० नी० (क्षीरनीरविवेकेन हंसो भवति विवरः) स्कं० पु० "हंसरूपेण प्राप्तोऽयम्) प०पु० इन प्रमाणों से हंस पक्षी का वाचक है । और वेदों में भी भगवान् हंसावतार लिखा है । सो हमने "सर्वावतार संग्रह मीमांसा" में दर्शाया है ॥ बुभुत्सक वहां से जान लें ॥ और (विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तर पदयोर्लोपो वा वाच्यः) इस कात्यायन के वार्तिक वचन से "हंस पक्षी" इस पद के उत्तर पक्षी पद का लोप हो रहा है ॥ इस लिये भगवान् ने हंस पक्षी का स्वरूप धारा था, कि सनत्कुमार शूद्र है, और भागवत के ११ स्कं० में (कथं घटेत वा विप्राः) (मयैतदुक्तं वो विप्राः) इन पद्यों में, केवल विप्रपद के प्रयोग सें भी सनत्कुमार शूद्र था । क्योंकि शूद्रों को आशुतर क्रोधावेश होता है । इस लिथे विप्र पद का प्रयोग किया है ॥ यह भी निश्चय हुआ कि वह संन्यासी न था अन्यथा विप्रपद का प्रयोग न आता ॥ यदि कहो कि विप्रपद के प्रयोग सें सनत्कुमार शूद्र भी सिद्ध नहीं होता ? सो यह कथन भी अल्प श्रुतों का ही है ॥ क्योंकि (ब्राह्मणानामयं ग्रामः) यद्वा छत्रिणो यान्ति) इस न्याय सें विप्र का प्रयोग किया गया है । कोई शूद्र सनत्कुमार के लिये नहीं किया, अतः सनत्कुमार शूद्र था संन्यासी भीं न था, केवल वह उत्पथ प्रतिपन्न उदासी के समान था—अब विचारो उदासियो अन्धे ने तुम को क्या बता दिया है ॥ अतएव (अन्धस्यैवान्ध लग्नस्य विनिपातः पदे पदे) वाह जी वाह क्या ही अच्छा विराट् स्वरूप उदास पन्थ ने धारण किया है ॥ "किसी मूर्ख का कथन है कि, विप्रपद का प्रयोग तो, संन्यास दीक्षा से पहिले ही आया है, पश्चात् तो संन्यासी वा मुनि शब्दों का प्रयोग हुआ है, इस लिये अवश्य संन्यासी थे" सो यह कथन भी मिथ्या ही है ॥ क्योंकि पक्षी दीक्षा के वाद भी विप्र या ब्राह्मण शब्दों का चारों के लिये प्रयोग किया गया सर्वथा दृष्टचर ही है ॥ और सनत्कुमार के लिये तो केवल शूद्र पद का प्रयोग किया हुआ है ॥ जैसे कि भविष्यत्पुराण में पृ० २१४ के प्रकरण वैधी में (शूद्रोऽयं खलु सोनद्धकुमारो यस्य चर्म्मणि) इस में व्युत्पत्ति के साथ ही सनत्कुमार को शूद्र कहा है ॥ और हारीतकीय में भी (पितुराज्ञा-ममन्ता च कनिष्ठो यदि सर्वदा— स हि शूद्रश्चमन्तव्यः सर्वकर्म्मवहिष्कृतः, तेन सनत्कुमारोऽयं शूद्रतां याति जन्मना) इन प्रमाणों से भी वादी को नतमस्तकता से सनत्कुमार को शूद्र मानना होगा, अन्यथा नास्तिकत्व की संभावना वादीनिष्ठ अनिवार्य्य होगी ॥ ये पूर्वोक्त श्लोक विश्वेश्वर भाष्य के पृ० ११२ में तथा

चन्द्रभाष्य के १११ में विद्यमान हैं ॥ इस अन्धे को तो अपने गुरुओं के भाष्य सर्वथा प्रमाण ही हैं ॥ अतः—पथ भ्रष्ट उदासियों का भी इस अन्धे ने खूब विरसता प्रदान की है ॥ और (बनिये की जब बुद्धि हाट-तब लों बुद्धि जाट की वाट) क्या अब भी कोई अन्ध शास्त्र मर्म शून्य जाटों की कृति को प्रमाण मानेगा क्योंकि (वारिमथे शुद्ध घृत बने सिक्ता से होये तैल, अन्ध जाट को होत न शास्त्र ज्ञान आपैल) इस कविता के अनुसार ही चन्द्रभाष्य तथा विश्वेश्वर भाष्य के पृ० ११-१२ मेंभी लिखा है कि (वर्ण संकराणां नास्तिशास्त्रेऽप्रतिहतगतिस्तेहि पाश्चाले जाटा इति नाम्ना प्रसिद्धाः) अन्यथा इस गुरु वाक्यको न मान कर नास्तिक बनो ॥ क्या (अन्धे को अन्धेरे में बड़ी दूर की सूझी) इस का अनुकरण करेंगे गङ्गादास तो अन्धा था ही परं इसकी पीठ ठोकने वाले पण्डित भी निवट अन्धे ही बन गये, क्योंकि (चढ़जा सुत सूली मैं बाल बंक नहीं होत-ऐसो तुलसी सों कहत कहत मनमोत) पुनः पृ० १६४ औ० मैंअन्धे ने सनत्कुमार को ब्राह्मण लिखा है, सो तो सर्वथा वितथ तथा अशुद्ध है ॥ क्योंकि सर्वसंमत वा सच्छास्त्र के प्रमाण द्वारा सिद्ध हो चुका है कि सनत्कुमार जन्म सें शूद्र था, हम पूर्व सिद्ध भी कर आये हैं " और वर्णचतुर्थोपनिषद् " में भी सनत्कुमार को शूद्र लिखा है कि, (येच पुराण विधया सन्ति नु सनकादयस्तेषां चर्मजः शूद्रः शूद्रवर्ण प्रवर्तकः) खं ६ मं ११ चन्द्र भाष्य में इसको " गौढ़ीश्रुति " के नाम सें पृ० ३ में लिखा है । सो मिथ्या है । क्योंकि गौढी में इसका पाठ नहीं मिलता है । इतने प्रमाण जागरुक होते हुये भी जो सनत्कुमार को ब्राह्मण लिखें तो (मूर्खोवद कीदृशो भवति) स्मरण रहे कि वेद विरुद्ध धर्म्मा भासका प्रचारक भी यही एक पहिली व्यक्ति थी, और जन्म सें तो यह शूद्र ही था परं काम भी वही किये थे, फिर वेद विरुद्ध उदास धर्म्म के बहुधा व्यसन तुण्ड प्रवृत्त होते आये हैं " पुनः इस अन्धे ने पृ० १३८ में अपनी गुरु प्रणाली लिखी है, सो इस में तो किसी को कोई आपत्ति नहीं है, परं शोक केवल इतना ही है, कि अन्धे ने ऋषि मुनियों को भी वेद विरुद्ध पथभ्रष्ट उदास पन्थ का दोष दिया है, कि ऋषिमुनि भी उदासी (वामी) थे ॥ परं हम को कोई आपत्ति नहीं है, कि उदासी लोग चाहे, ऋषि मुनि वा भङ्गी डूम या नाई धोबी वा चमार धीवर या वैश्य जाट वा चौर डाकू या लुचे गुण्डे किसी को भी गुरु माने और चरणामृत पियें, परं इन को उदासी (वामी) कहना केवल मूर्खता है ॥ (प्रथमे ग्रासे मक्षिका भक्षिता द्वितीये किं—करिष्यति) इन वामी उदासियों ने प्रथम गुरु सनत्कुमार को माना है ॥ सो जन्म का शूद्र था, परं वह

गुरु हो भी नहीं सक्ता क्योंकि सनत्कुमार तो मानसिक (अमैथुनी) सृष्टि का शूद्र था, इस लिये मानवी (मैथुनी) सृष्टि के शूद्रों का गुरु नहीं हो सक्ता। और सनत्कुमार आमरण पर्य्यन्त अज्ञानी ही रहा था इस में हजारों प्रमाण हैं। प्रथम इन को अद्रिजा ने शाप दिया था तब अश्वपाल बना था, फिर अपनी मूर्खता सें रुष्ट्वना तथा गधा बना॥ पुनः ब्रह्मा के शाप से पत्थर बना था॥ फिर नारद जी के शाप सें चौर कर्म्मा बना था, पुनः विष्णु जी के शाप सें स्त्री बना। यह ऐसा हठी कुकर्म्मी मन्द प्रज्ञा था कि, इस को कुच्छ भी विवेक न था, यदि ज्ञानी होता तो अनर्थक रूप पाप जनक योनियों में न जाता, क्योंकि ज्ञानी के जन्मादि को श्रुति स्वयं कण्ठरब सें निषेद करती है! कि (ज्ञानादेवतु कैवल्यम्—ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः—ज्ञाते सति जन्मादि प्रहाणम्—ज्ञाने न पुनः शरीरम्—नस पुनरावर्त्तते—ज्ञाने न शापः स्पर्शयति=इन श्रुति स्मृति सूत्र वचनों द्वारा ज्ञानी के जन्म का अभाव निश्चय है॥ किसी का मत हैं कि ज्ञान होने से पहिले ही शाप वा जन्म सनत्कुमार के हुये थे, ज्ञान होने पर नहीं! सो यह कथन भी अल्पश्रुतों का ही हैं, क्योंकि इस में कोई प्रमाण भी नहीं है। और पूर्वोक्त प्रमाणों से यह जन्म से मरण पर्य्यन्त ही उत्पथ प्रतिपन्न ही रहा था। (नहि मन्ये पितुराज्ञां जातमात्रेण नारद!) इस राणीय स्मृति में तो स्वयं बोल पड़ा कि मैं नारद सच कहता हूं कि मैं ब्रह्मा जी की आज्ञारूपी वेदों को नहीं मानता हूं क्योंकि वेदों में पुरुषों को व्यसन सेवन का कोई भी समय नहीं है॥ "अब देखो कि उदासियों ने नं० २ के गुरु नारद जी को माना है" सो सर्व को ज्ञात है कि यह नं २ का गुरु नारद स्वयं ही विगुरु था, और कामी विषय [लम्पट तो इतना था कि स्त्रियों के लिये यह शाखा मृग (बानर) भी बना था, इस लिये वानरों को गुरु मानना किसी पढ़े लिखे मूर्ख का काम हैं॥ और वानरों से आजीविका करने वाले कलन्दर बहुत बानरों को गुरु मानते हैं, परं यह नारद भी श्रौत स्मार्त्त भेद से दो थें, क्योंकि (ना-पूसारं-वेदान्त जन्योपदेशंदः—ददातीति नारदो गुरुः) इस प्रातशाखीय व्युत्पत्ति सें श्रौत तो केवल गुरु का ही नाम है, किसी व्यक्ति विशेष का नहीं - यह वार्ता चन्द्रभाष्य पृ० ११ मैं भी लिखी है कि, (नारदो नैकः श्रौत प्रयोगेषु दैशिक त्वनोल्लेखात्) जिस पन्थ के वानर प्रथम गुरु हों सो पन्थ क्यों न वाली के चेले बनें क्योंकि वाली भी उदासी था, उसके चेले अभी पर्य्यन्त उदासी लोग वर्त्तमान हैं। (उदासीनेषु यो ऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रकाशितः ४६ सर्ग १७ इस रामायणोक्ति से भी बानर उदासी सिद्ध है इसी लिये अन्धे ने बानरों

को गुरु नं० २ में माना है॥ और इन उदासीयों में वामता का वीजारोहण करने वाले भी बानर उदासी ही हैं॥ क्योंकि यह उदासी (मातरमपि न त्यजेत्) का काम करते थे देखो (भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्य्यां जीवितो महिषीं प्रियां–धर्म्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितः) रा० कि० कां० सर्ग० ५५ श्लो० ३ में उदासियों की वामता दिर्शाई है॥ और (कथं स धर्म्मं जानीते) ४ इस में साफ लिखा है कि, उदासी लोग मातृगामी धर्म्म को कैसे जानेगे, अर्थात् यह वामी धर्म्म का तो गला मर्दन करना चाहिते हैं॥ क्योंकि प्रमादी लोग धर्म्म नहीं कर सक्ते, व्याधिस्त्ये-यो० द० सु० ३०-स० पा० में भोज ने प्रमाद का अर्थ औदासीन्यम्, किया है। इस प्रमाण सें भी उदासी प्रमादी नर कैसे धर्म्म को जानेगे॥ अब नं० ३ में बाभ्रव्य को गुरु माना है। परं इस अन्धे वा अन्धे के चेलों को यदि इतिहास का कुच्छ भी बोध होता तो ऐसे अनर्थ में न कूदते। क्योंकि यह बाभ्रव्य किसी व्यक्ति का नाम नहीं है, ऋग्— प्रातिशाख्य ११ में लिखा है कि (इति प्रबाभ्रव्य उवाच चक्रमम्) और ऋक् प्रातिशाख्य के भाष्यकार उव्वट ने (इत्येवं बभ्रु पुत्रो भगवान पाञ्चालः क्रमस्य वक्ता शिष्येभ्यः) लिखा है, तथा महाभारत शां० प० में भी— (पाञ्चालेन क्रमः प्राप्तस्तस्माद् भूतात् सनातनात्-बाभ्रव्य गोत्रः स बभौ प्रथमं क्रमपारगः) इन प्रमाणों सें बभ्रु के वंशजों का बाभ्रव्य नाम अवश्य है बाभ्रव्य किसी व्यक्ति का नाम दृष्टचर नहीं है॥ सोबभ्रु पाञ्चाल देश का राजा था, और राजा विराट् के नाते का यह परम मित्र था, और इस के दो पुत्र थे, एक शत्रुमर्दक, दूसरा मन्युमर्दक इन दोनों को ही बाभ्राव्य शब्द से कहा गया है॥ परं दोनों में मन्यु मर्दक बाभ्रव्य तो बहुत विद्वान् हुआ था, इसी ने ही ऋक्क्रमसंहिता बनाई थी, और शत्रुमर्दक तो वस्तुतः बुद्धि मर्दक था, और अपने पिता बभ्रु की आज्ञा नहीं मानता था, इसी लिये इस शत्रुमर्दक बाभ्रव्य को पाञ्चाल देश से निकाल दिया था, वह केरल देश के टालम ग्राम में रहता था, और वहां धीवरी सें विवाह करके सन्तानोत्पत्ति की थी सो वह भले ही उदासी वेद विरोद्धि अधर्म्म का प्रचारक होगा॥ इसी लिये तो महाभारत में वा ऋक् प्रातिशाख्य भाष्य में उव्वट ने बभ्रु के पुत्र शत्रु मर्दक की व्यावृत्ति वास्ते और मन्युमर्दक के ग्रहण के लिये पाञ्चाल विशेषण दिया है, इस लिये शत्रु मर्दक इस उदास पन्थ का पोषक अवश्य होगा, देखो (टिट्ट फोर टैट) अर्थात् (जैसे को तैसो मिले कर कर लम्बे हाथ) जैसा श्रीचन्द नानक जी की आज्ञा भङ्ग करता था, तैसे ही नं० १ नं० २ नं० ३ के गुरु भी मिल गये परं गुरु माला खूब

चुन २ कर लिखी है, परं इस अन्धे से पूछना चाहिये कि बाभ्रव्य किसी नर का नाम है, वा वंश का, यदि नर का है तो, "बाभ्रव्यगोत्रः" यह क्यों लिखा गया है, यदि वंश का नाम है तो, आप का गुरु कैसे होगा क्या इतना भी ज्ञान नहीं तो लेखनी क्यों उठाई थी, क्या (जाट की बुद्धि बाट) को सार्थक बनाते हो, आप सूर्य्य देवता की उपासना करो यदि दूसरे जन्म में आप को नेत्र प्रदान द्वारा सुबुद्धि बनायें, यह पूर्वोक्त समस्त विवर्ण व्याढी मुनिकृत विकृतिवल्ली के ३ इतिहास विवर्ण में २५ श्लोकों में विवर्ण किया है ॥ सो इतिहास ४ प्रकार का होता है, एक तो धर्म्म सम्बन्धी १ दूसरा जीवन सम्बन्धी २ निन्दा सम्बन्धी ३ और चौथा प्रशस्ति सम्बन्धी ४ सो चारों के मध्य केवल धर्म्म सम्बन्धी ही इतिहास प्रमाण होता है, इस लिये भी धर्म्म सम्बन्धी सर्व कार्य्य मन्यु मर्दक बाभ्रव्यगोत्र का ही, नतमस्तक मानने के योग्य है ॥ शत्रु मर्दक का तो निन्दा रूप होने से हेय है व्याढी मुनि ने इस को (मधु बभ्रोर्ब्राह्मण कौशिकयो: ४-१-१०६ इस पाणीनि के सूत्र में बहुत गन्दा महाभ्रष्ट भगिनी पति भी लिखा है । और यह भी लिखा है कि (अपाश्चालश्चवै नित्यं सोदरी हि पतिस्तथा—बाभ्रंव्योऽयं सततं धर्म्मे न रतिमान् भवेत्) क्या अब भी शत्रुमर्दक को कोई शृङ्ग विकल नर पिशाच गुरु मानेगा, यदि हाँ तो सब उदासी धैवरगोत्रज बन ही गये अतएव (अन्धस्यैवान्धलग्नस्य विनिपात: पदे पदे) से अन्धे ने वामियों को धीवर पन्थी उपासी बना दिया है ॥ धन्य हो बामो उदासियो ! अब आप की आजीबिका भी भाठ में दाने भूनकर चलाने की धीवरी निकल पड़ी है, नं० ४ का गुरु दाल्भ्य माना है, सो इतिहास अज्ञान से पद पद में धक्के हो पड़ते हैं ॥ यह दाल्भ्य तो दल्भि ऋषि ने वेलर नद से एक वक (वगुला) पकड़ कर पाला हुआ था, परं दल्भि का होने से दाल्भ्य नाम से कहा जाता था, इस लिये शास्त्रों में (वकोदाल्भ्य:) ऐसा नाम स्मरण किया है । अत: इन उदासियों का नं० ४ का गुरु वगुला हुआ है, अब वगुला पन्थी भी बन गये ॥ एक दिन पंपा में प्रभु रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा कि, (पश्य लक्ष्मण ! पंपायां वक: परम धार्म्मिक: मन्दं मन्दं पदं धत्ते जीवानां वधशंकया १ यह राम जी के वचन सुनते ही एक मच्छली बोली कि (वक: किं वर्णिते राम ? तेनाहं निष्कुलीकृता—सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम् २) स्मरण रहे कि उदासियो ! तुम्हारी पोल को प्रभु रामचन्द्र जी भी जानते हैं ॥ सम्भव है कि रामचन्द्र जी को भी इसी लिये उदासी लिख मारा हो कि हमारी पोल को जानते हैं ॥ इस बात को अनुपद ही कहेंगे ॥ अस्तु नं० ४ का

गुरु बगुला हुआ इस लिये सिक्खों को बगुला भक्ति दिखा कर ग्रन्थ साहिब को चट कर गये अब वेद को भी बगुले के चेले बगुले पन्थी चट करना चाहते हैं ॥ क्योंकि दल्भि ऋषि ता बाल ब्रह्मचारी था, उस की सन्तान कहां से होगो—हाँ श्रौत प्रयागों में तो दाल्भ्य नाम ऋषि का आता है, सो तो हम भी मानते हैं परं इस अन्धे ने तो पृ० १४३ श्रौं० में अपनी गुरु प्रणाली केवल युधिष्ठर जी के समय से चली लिखी है। परं श्रौत स्मार्त्त ऋषि मुनि तो पूर्व ही हो चुके हैं॥ पुन: पृ० १४२ श्रौं० में अन्धे ने अपनी गुरु प्रणाली पूर्व लेख से विरुद्ध— कलि के आरम्भ में नारद, वा सनत्कुमार से चली लिखी है, क्या ??? कलियुग में केवल उदास पन्थ ही चलेगा, क्यों न चले वामी उदासी व्यसनी बहुत हैं, क्या इस लेख में कुच्छ विरोद्ध भी वामियों को प्रतीत होता होगा, क्योंकिं इस लेख मैं परस्पर विरोध नहीं तो क्या (व्रीड़ा नयन धार्म्मिका) है, धन्य हैं इन कलि के दूतों को जो कलि को आशुतर बुला रहे हैं॥" उदासीना हिं संयान्ति हेतुतां कलिसर्पणे" क्यों जी अन्धे तुम ने तो पृ० १४३ श्रौं० में केवल १६५ ही गुरु लिखे थे, जिन में धर्म्मांश युधिष्ठर का तो नाम भी नहीं आया था, अत: उससे गुरु प्रणाली कैसे चली है॥ क्या आप को यह नहीं ज्ञात कि युधिष्ठर जी कभी २ उपहास किया करता था॥ क्या धर्म्म की मूर्त्ति कभी ऐसे २ शास्त्र विरुद्ध कार्य्य में भाग ले सकती है, आपने तो (कहीं की ईट कहीं का रोड़ा भानवति ने कुनबा जोड़ा) का अनुकरण खूब किया है ॥ क्या इतना जुलम॥ जो ऋषि मुनि वा चोर डाकू या लुच्चे गुण्डों को एक ही घाट में पानी पिलाता है॥ क्या उदास पन्थ के आचार्य्य भूल कर या ज्ञात पूर्वक भी यदि चोरी जारी करें तो क्या सर्व ऋषि मुनियों को ही दूषित करना है॥ स्मरण रहे कि चन्द्रभाष्य मैं वा विश्वेश्वर भाष्य में ११ वर्ष की आयु में नानक पूता ने, सुलतानपुर मैं एक नापित की कन्या का शिरो भूषण चुराया था, तब नानक जी ने ५ दिन को खूब कारागार प्रदान की थी, और इस अन्धे ने सब गुरुओं को क्रम सें शिष्य पर शिष्य माने हैं॥ परं बाभ्रव्य शत्रु मर्दक ने बाभ्रव्य मन्यु मर्दक को ३३ वर्ष ३ मास ११ दिन की आयु में विषप्रदान द्वारा मार दिया था, किसी का मत है कि, जादुगर बङ्गीय से अभिचार द्वारा मरवाया था॥ और आप भी ३ मास ७ दिन पश्चात् यम का अतिथि बन गया था ॥ इन दोनों के पश्चात् लगभग ११ सौ २२ वर्ष के अन्तर में बगुला (दाल्भ्य) हुआ था, जो अल्प बुद्धि भी रखता होगा, सो जान जायेगा ११ सौ २२ वर्ष पश्चात् उत्पन्न होकर गुरु वा चेला कैसा बनेगा॥ बस इसी प्रकार समझ लो

अन्य लेख इस अन्धे का कहां तक सत्य होगा, परं (जाट की बुद्धि वाट) बना कर दर्शाई है ॥ और युधिष्ठर से पश्चात् भावी सब गुरुओं को माना है, क्या अन्धा अपनी लेखनी उठा कर इन १६५ गुरुओं को युधिष्ठर से उत्तरभावी सिद्ध करेगा, अन्यथा इस गन्वे महाभ्रष्ट पुस्तक को अग्नि में हुतप्रदान करे, यद्वा जलधाराशयो बनाये, नहीं तो लेखनी उठाकर १६५ गुरुओं को धर्म्मराजोत्तर स्वतुण्ड से सिद्ध करे ॥ परं इन समस्त को गुरु मानों और इन के चरण चाटो और अपनी दुम्ब हिलावो, परं वे समस्त भ्रष्ट पन्थी न थे, आपने तो सर्व को पीलियारोग कल्प उदासी (वेद विरोधी) ही बना दिया है ॥ यदि हम से पूछो तो नानक पूता भी उदासी न था, क्योंकि गिरियों के चेले कभी वामी उदासी नहीं हो सकते ॥ श्रीचन्द तो संन्यासी था, परं केवल नानकदास ने अपने साथ मराशी को रक्खा था, श्रीचन्द के कहने से बाज़ नहीं आया था, श्रीचन्द का कथन था कि यतियों को सङ्ग से दोषावेशा निवार्य्य है, (नानक ने वरुण से संन्यास लिया इन के ग्रन्थों में लिखा हुआ है) और नानक पूता भी नानक समान संन्यासियों का चेला था, यह पूर्व लिख चुके हैं, श्रीचन्द ने केवल विद्वेष सें और पिता नानकदास का मराशियों सें सङ्ग निवारण के लिये वाम मत आश्रय लिया था, फिर व्यसनों से पुण्यात्मा की ही निवृत्ति होती है ॥ यह समस्त लेख चन्द्र भाष्य के "स्वजीवनम्" इस प्रकरण पृ० ४०५ में लिखा है ॥ भला प्रमाण विकल युक्तिरिक्त मूर्खों का मत पागलों को तो श्रेय लगता होगा परं जो कुच्छ बुद्धि रखता होगा सो इन मूर्खों के जाल में न फसेगा, ज्ञात होता है कि, जाट लोग मद्यपान कर दु, दु, दु, करते रहते हैं, तैसें इस ने भी अपनी जाट जाति को स्मरण कर गाल बजा कर नयन विकल तुण्ड से अण्डवण्ड लिख मारा क्योंकि (जिह्वायाश्छेदनं नास्ति न तालुपतनाद् भयं निर्विशंकेन वक्तव्यं वाचाल: को न पण्डित:) वाह जी वाह मियांपन्थी की पण्डिताई को सब क़ाजियों की सजदा मेकद् हैनड॥ जैसे अन्धे को रूप का ज्ञान नहीं होता तैसें जाटों को शास्त्र ज्ञान नहीं होता है इसी लिये आप एक तो अन्धे दूसरे जाट तीसरे ग्रन्थ के पाठी अतएव यह लोग एक उपधि रूप पद्य कि, (वारस्य सुरापानं मध्ये वृश्चक दंशनं—तन्मध्ये भूतसञ्चारो यद्वा भविष्यति) इस अन्धे ने सूधन्वा और श्वेतकेतु को भी वामी उदासी ही लिख मारा, परं स्मरण रहे कि श्वेत केतु तो वैदिक मुनियों का शिष्य था, और कनिष्ट अधिकारी था, क्योंकि इस को १० वर्ष में नवधावाक्यप्रवृत्ति से ज्ञान हुआ था, परं श्वेकेतु कोई कलियुग में

न था; किन्तु सत्ययुग मैं हुआ था, सो उदासियों का गुरु नहीं हो सक्ता क्योंकि अन्धे ने अपनी गुरु प्रणाली तो कलि के आरम्भ से वा युधिष्ठिर जी से मानी है ।। सो दरोगहलफी सें दोनों ही लेख मिथ्या है ।। और सुधन्वा को सब जानते हैं कि, युद्ध में भगवान् के चरणों में सदा के लिये रङ्गीले रङ्ग में रङ्गा गया था, परं एक और कलि में सूधन्वा हुआ था, जो मर कर पिशाच बना था, जिसका भावीयवृति से शतपथ में यह उल्लेख है कि, (तम पृच्छाम कोऽसीति सोऽब्रवीत् सुधन्वाङ्गिरसः) तथा अर्थववेद में भी (यस्ते गर्भं प्रति मृशाज्जातं वा मारयाति ते पिङ्गस्त मुग्रधन्वा कृणोतु हृदया विधम्) इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि यह राक्षस सूधन्वा तो अवश्य कलियुगी होगा, और वामी उदासी भी होगा वाहजी वाह !! चोर को चोर नर को नर राक्षस को राक्षस हज़ारों व्यवधान होने पर भी मिल ही जाते हैं, परं स्मरण रसे उदासियो भूतों के चेले मरके भूत ही बनते हैं। (भूतान् याति भूतज्ञः) गी० और पुनः इस अन्धे ने नं० १०८ वा नं० १०६ वा नं० १०७ के गुरु तो खूब चुनेहैं, जो तीनों ही पुरुष न थे, किन्तु एक तो पक्षी था, जिसका विवर्ण हो चुका है ।। शेष शक्ति और शान्ति दोनों राण्डां थीं, ये एक तक्ष की कन्यां थीं, सो शक्ति का नाम तो वन्नों देवी था, और इस की छोटी भगनी ही शान्ति थी, सो इस को विवाह से प्रथम ही गर्भ हो गया था, इस लाञ्छन से यह भी वैश्या का पेशा करती थी ।।

अब इस अन्धे ने अपना स्वरूप प्रकट कर ही दिया कि, हम सब कौलिक उदासी शक्ति और शान्ति के चेले हैं ।। इस कथन से बुद्धिमान् हम सब उदासियों को स्वयं वामी तो समझ ही लेंगे, अधिक गुरु क्यों लिखे जायें, परं इस ने जितने गुरु माने हैं इन मैं कोई भी फलांश वा साधनांश भ्रान्ति विकल नहीं है, हाँ इन में कुच्छ ऐसे तो हैं, जो कई पुस्तकों सें वामी और विषयी तो अवश्य हैं ।। (वादी) क्यों जी यह आपकी लेखनी कब विश्रान्त होगी ! उ०—जब इन वामीं वन्नों के चेलों को ईश्वर स्वच्छ बुद्धि प्रदान करेगा, क्योंकि (समानी व आकूतिः समानी हृदयानिवः— समानस्तु वो मनो यथा वा सुसहासति) ऋ० १०-१६१-४-इस मंत्र में शास्त्रशून्यनरपुञ्जों को समान मनो भाव वा संकल्प और आचार्य्य के लिये विद्यादान का आदेश किया है ।। यदि इस मंत्र का ज्ञान नहीं तो (यो नो ऽग्ने ! अररिवां अघायुरराति वा मर्चयति द्वयेन, मंत्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनुमृक्षीष्ट तन्वं वुरुक्तैः) ऋ० १—१४७-४- इस मंत्र में वेद विरुद्ध कथन करने वालों (दुष्टों) को पुनः मंत्र गुरु रूप से उपदेष्टा बनें; और इन दुष्टों की अपमित्र बुद्धि को नष्ट

कर पवित्रता प्रदान करे इति "सज्जनों इन वामी उदासियों के गुरुयों से सावधान रहना क्योंकि अन्धे ने मानों छुरों की माला तैयार कर दी है, क्योंकि इस में भूतप्रेत रूपी दाने ही गुरु माला है ॥ हे ईश्वर! इन वामियों को आशुतर सुबुद्धि प्रदान करो अन्यथा आपके कर कमलों से बनाया हुया संसार रसातल में निवास करेगा, आयो २ दुष्ट बुद्धि का खातमा कर जायो!! हे वृषभानुजधव! इस उदासियों के गुरु अन्धे ने तो यह निश्चय कर लिया है, कि झूठ वरोवर तप नहीं—सत्य वरोवर पाप—जा के हृदये पाप है ताके हृदये आप) हे प्रभो! इन वामी उदासियों को यमालय तो तैयार ही है, परं अपने निज पाप नाशिक दर्शन कव प्रदान करोगे॥ पुनः इस अन्धे ने पृ० ८० श्रौ० उत्त० में मुहम्मद के मरने पर—अवुवकर, उमर, अली, उसमान, ये चारों खलीफे लिखे हैं॥ सो उदासियों के भी धूनों के यहीं चारों गुरु थे, देखो अन्धे ने किस युक्ति से उदासियों को यवन बना दिया है॥ क्या इस का प्रत्युत्तर उदासियो के पास कुच्छ है, यदि है तो शीघ्र ही लिपिद्वारा जनता को दर्शायो! अन्यथा अलीकत्व व मुहम्मदीयत्व की संभावना विशेष रुप से संभावित होगी॥ अन्धे ने पृ० २६ की भूमिका में "श्रौतमुनि चरितामृत" के वन ने की जुम्मेवारी खुद अपने पर ली है॥ इस लिये इस का प्रत्युत्तर अन्धा स्वयं लिखे, अन्यथा औरों का लिखा हुया उत्तर केवल मूर्खता का चिह्न समझा जायेगा॥

यदि अब भी तुम ने किसी परमानन्दादि वामियों द्वारा नोटस वाजी की तो आपको किसी डूमनी का चेला बनना पड़ेगा, देखो "उदासीन मञ्जरी" के खण्डन में जो "उदासीनवृहन्मञ्जरी" पुस्तक है, उस में साफ लिखा है कि, (हम उदासियों का और यवनों का इतना ही भेद है, कि हम उदासी उदासियों को गाडते नहीं पृ० १५-पं०११ में) और "उदासधर्म्मकल्पतरु के" भ्रमसंशोधन नामक पुस्तक में भी उदासियों ने यवनों के समान मियां शाहदीन को अपना गुरु माना है। इस लिये वर्त्तमान समय में भी उदासी मियां वा शाह नाम से अधिक हैं॥ और शाह नाम के उदासी तो अब भी हजारो हैं॥ क्योंकि झङ्ग में उदासियों के डेरे का महन्त भूमनशाह था, और अब भी है, इस श्रौत मुनिचरितामृत के कर्तायों का निर्णय—१ प्रथम प्रवाह तो रत्नदास ने बनाया है। और दूसरा प्रवाह रामस्वरूप (सन्त समाचार के ऐडीटर) ने और आत्मस्वरूपदास गुरुमण्डल वाले ने भी लिखा था, तीसरा प्रवाह असङ्गानन्द ने, और चौथा प्रवाह हरिप्रसाद एकाक्षी ने इस ने दूसरा भी कुच्छ लिखा था, पञ्चमा प्रवाह लाला राम लाल ललित लल्ल ने

बनाया था ॥ षष्ठम प्रवाह हरि सिंह ने और सप्तम प्रवाह तो गुरुदास ने और काशी शूद्रदास ने बनाया है ॥ इन में शेष शास्त्र विरुद्ध विषय इस अन्धे गङ्गादास ने लिखे हैं परं इन पूर्वोक्त फूलशाह के चेलों ने (व्रीडा नयन धर्म्मिका) को जानकर अपने नाम नहीं लिखे, केवल नयन विकल का ही नाम लिख मारा, परं अब इस का उत्तर अन्धे की बुद्धि से बाहर है, इस लिये अब एकाची हरिप्रसाद को उचित है कि, अपने मूर्ख छोकरों को समझा कर, स्वयं अपना लेख लिखें कि हम उदासियों को भी यति वा संन्यासी या परिव्राजक शब्दों से संन्यासी शब्दित करें, हम अपने वेदानुसार इन वामियों को शुद्ध करके अधम कोटी के नरों में भरती करेंगे ॥ क्योंकि नैसर्ग—हरि प्रसाद जी एक उच्च कोटी के विद्वान् हैं, इस लिये उदासी रूपी दर्दुरों को तुला समारोह करना केवल इसी का ही काम हैं ॥

॥ उदारता ॥

हमारा प्रथम से ही विचार था कि सब आश्रमी (संन्यासी) ही कहलाओ और अपना इष्ट भी वेद को मानों ॥ परं कोई भी इस आकूत को नहीं समझा, अस्तु हम तुम को शुद्धि द्वारा तो संन्यासी मानेंगे, परं मानेंगे अपनी शिष्य कोटि के क्योंकि मर्यादा भी तो विद्वानों की इतिकर्तव्यारूप है ॥ बस इस गङ्गादास की पुस्तक का भी यही एक मात्र प्रयत्न था कि, हमको भी संन्यासी मानों, परं यतियों के चेले बनना उदासियों ने स्वीकार न कर केवल विरोध ही कर मारा, सो इन वामी छोकरों को समझाना केवल हमारा ही काम नहीं है, किन्तु हरिप्रसाद का भी है, क्योंकि प्रयागराजमें तुम उदासियोंने गीता प्रदर्शना में हम को बुला कर यही एक प्रस्ताव नियत किया था, कि हम उदासियों को भी संन्यासी बनायो, सो हमने उस समय साफ कहा था कि, (विधिवत् कर्म्मणो न्यासः संन्यासः प्रकीर्तितः) का आश्रय लेकर स्वयं संन्यासी बन जाओ हम अभी से आप को संन्यासी समझेंगे ॥ परं आप के छोकरों ने इस प्रस्ताव का उलटा ही पालन किया अस्तु ॥ देखो अन्धे के पुस्तक में पूर्व खण्ड में चार प्रवाह हैं, और उत्तर खण्ड में तीन प्रवाह हैं, इन में उदासियों की खूब काली करतूत ठसाठस भरी पड़ी है ॥ परं अब इन वामी उदासियों ने अपना इष्ट तो वेद माना है, परं वेद विहित संन्यास पर आक्षेप करने यह क्या दुरङ्गी चाल है ॥ इस में खूब पथभ्रष्टों का गहरी छनी हैं ॥ इस गङ्गादास का तो यह समाचार हुआ कि, छोटे २ सर्पों की तो विष

उतारनी आती नहीं, परं बड़ी भारी हालाहल का प्याला पीना चाहे क्योंकि पठन पाठन की वा स्वमत की काली करतूत आती नहीं, परं वेद के बृहद्विषय संन्यास पर लेखनी उठाली—स्मरण रहे किऐ से कलि के मूर्खों वास्ते किसी कवि ने क्या ही श्रेष्ठ उदहार प्रदान किया है कि, (अज्ञातसंन्यासरहस्यमुद्रा ये न्याये मार्गेदधतेऽभिमानं ते गारुडीय मनधीतशास्त्रं हालाहलं स्वादनमारभन्ते) ॥

उदासीना यवनप्रियाः ।

देखो वर्त्तमान में भी उदासी वामी यवनों को ही श्रेष्ठ मानते हैं ॥ इन के दास नामान्त महन्त अपने डेरों में व्यसनार्थ मराशना (यवनानी) को रखते हैं ॥ जैसे कि ननकाना में वा नखनौ में या भूमणशाह के डेरे झङ्गमें यद्वा नैपालमें वनखण्डी के पार्श्ववर्त्ती उदासियों के डेरेमें उदासियोंके गुरु यवन महन्त अबतक विद्यमान हैं, वा अमृतसर में या उदासी मण्डलियों में मराशना विद्यमान हैं ॥ जैसे कि नानक की मण्डली में मराशी रहता था, तैसे अब मराशना रहतियां हैं ॥ क्या अब भी उदासी तुम इनकार करोगे कि उदासी मियां पन्थी नहीं हैं ॥

पिशाचगुरुका उदासीनाः ।

गङ्गादास उदासी ने नं० ६२ सिद्ध नामा गुरु माना है, सो पिशाच था, क्योंकि (पिशाचो गुह्यकः सिद्धः) इस प्रमाण से नमुचि के वंशज में सिद्ध नामा राक्षस समस्त किंनरों का राजा था, सो अब इन उदासियों का गुरु भी बन गया, क्या करें समय बहुत विकट है, (सत्यर्थे—गर्धभोऽपि जनकायते) श्रेष्ठ नरों के अभाव में राक्षसों को भी गुरु बनाया है ॥ और सिद्ध कुल का ही भूमणशाह साफ यवन था, जो उदासियों का प्रथम गुरु था, "चनकराशी का अजारक्तकन्याय" सें वेद भी मूर्खों से डरते हैं कि (बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो येन मां प्रहरिष्यति) परं स्मरण रहे जो अपने अस्तित्व को ही मिटाते हैं, तिन्हों का चारों तर्फ से पतन ही होता है॥ देखो कविवर भर्तृहरिने श्रीगङ्गा जी का उदाहरण सामने धर के क्या सुन्दर उपदेश किया है, कि (शिरः शार्वं स्वर्गात् पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं—महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्=अधो गङ्गा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा—विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ गङ्गा का पतन स्वर्ग सें शंकर हिमालय तथा क्षिति पर्य्यन्त विश्रान्त न हुआ तो समुद्र में गिरि तत्र अपना नाम रूप वा अस्तित्व ही खो दिया ॥ तैसे ही इस लोक में जो विवेक भ्रष्ट वा

अपना पन्थ छोड़ कर अन्य मार्ग में प्रवेश हुये हैं तिह्नों का भी अस्तित्व अवश्य संसार से विदा हो जायेगा, अतः उदासी कुच्छ काल तो सनातनी रहे फिर सिक्ख रहे, पुनः उदासी रहे अब यह संन्यासरूपी समुद्र में गिर पड़े हैं, अतः अपने नामरूप दोनों ही मिटा देंगे, क्योंकि जिन्हों का पतन विश्रान्त न हो, तिह्नों का जीवन भी पशुओं के समान होता है, अब इन वामियों का तो अन्तिम खेल है, जीवनरूपी मधु को खो दिया है, केवल गौढ़ो मधु के ही पशु हो रहे हैं, जो पुरुष मिथ्या बातें बनाये तो उस की पुष्टि में कुच्छ युक्ति भी झूठी बनाता है, जैसेकि किसी ने अपने मित्रों से कहा कि आज सुबह ४ बजे आकाश में कुत्तिया बोलती थी, तब मित्रों ने कहा कि इतनी गप्य क्यों हांकता है, आकाश में कुत्तिया कहां, तब उस ने कहा कि नहीं २ हमारी कुत्तिया के बच्चे को चील आकाश में ले गई थी, तब सब ने कहा कि यह तो हो सकता है, तैसे ही इस अन्धे ने भी गप्य हांको कि उदासी भी संन्यासी हैं, वेद विरोधी नहीं, तो सब वामियों ने मिथ्या जाना, तब अन्धे ने कुच्छ और भी झूठ बोला कि, श्रुति स्मृतियों में भी उदास पन्थ लिखा है, तब तो भोले भाले मूर्ख उदासी बोले कि अब तो सत्य होगा, परं (अन्धस्येवान्ध लग्नस्य विनिपातः पदे पदे) देखो उदासियो ! तुम्हारा नामरूप अब सर्वथा अन्धे ने मिटा दिया है, क्योंकि समुद्र में नदी के समान सब उदास पन्थी अपने अस्तित्व को मिटा कर संन्यासियों के अविधिज चेले बनेंगे ॥

॥ उदासियों का भविष्य ॥

जैसे एक ग्रेजुएट तो स्टेशन मास्टर बन कर स्टेशन पर रहने लगा, तो, ५० और ग्रेजुएटों को पता लगा कि, यह भी ग्रेजुएट है, और हम भी सब ग्रेजुएट हैं, तो हम को तनखाह क्यों न मिलेगी, इस लिये चलो हम भी सब मिल कर स्टेशन पर जाकर ट्राफिक मैनेजर को तार देदें कि हम भी ५० ग्रेजुएट स्टेशन के दफतर का काम जानते हैं, इस लिये सितम्बर सें सब की तनखाह भेजिये, तब रेलवे आफीसर आयेगा, और सब को कहेगा—कि आप सब अपना २ स्टेशन मास्टर बनाने का हुकम दिखलाओ—कि किस कम्पनी ने तुम्हें नौकर बनाया है ॥

तब परिणाम यह होगा कि पुलिस द्वारा सब को लातों वा अर्धचन्द्रिका प्रदान दिलाकर निकाल दिया जायेगा, क्योंकि इन के पास कम्पनी की की कोई सनद न थी, तैसे ही, वामी उदासियों को भी, अन्तक पूरा २ दण्ड देगा, क्योंकि इन के पास भी तो संन्यासी होने की सनद नहीं है ।

क्योंकि (विधिवत् कर्म्मणोन्यासः संन्यासः प्रकीर्तितः) केअनुसार संन्यासी नहीं बनें, किन्तु अविधिज संन्यासी बनते हैं, इसी लिये "अमेरिका के टुस्टो नामक प्रधान महापुरुष ने संन्यास को ही वैदिक सम्पत्ति माना है, और इङ्गलैंड के मीडेरच नामक पण्डित ने भी संन्यास को हो वैदिक सर्वस्व माना है कि (दी वैडिक मैनी पादर टरुथ) अन्य समस्त मतों को तो वातावरण लिखा है, क्योंकि अन्य पन्थ सनद दान नहीं हैं ।। यद्वा एक ही वितस्ती परिमाण कागज़ में सरकारी मोहर होने से १०० सौ रु० कीमत होती है, परं मोहर शून्य उसी समान कागज़ को बाबू लोग बूट वा चूतड़ पोंच कर जूतों में फैंक देते हैं ।। तैसे हो यतियों के चूतड़ पोंचे हुए कागज़रूपी उदासी भी किसी पाखानेरूपी अन्तक गृह में निवास करेंगे ।। अतएव अब उदास कर्म्म (अवैदिक कर्म्म) छोड़ कर सच्चे यतियों के चेले बनों और बिधि से प्रेम करो, अविधिज मार्ग से प्राङ्मुख रहो, क्योंकि अब स्वधर्म छोड़ कर संन्यास समुद्र की शरण में आये हों, अतः सिक्खों से मत डरो क्योंकि तुम्हारा अब अस्तित्व सर्वदा के लिये गुप्त हो गया है ।। अब उदासी खूब गीतियों का गायन करें कि (नैजमुदासहातं संन्यास-शरणं गता वयम्) परं स्मरण रहे कि जब तक किसी संन्यासी गुरु के चेले न बनोंगे तब तक पतित ही उदासी रहोगे, क्योंकि वेद विरुद्ध क्रिया के कर्ताओं को केवल पशु को ही उपमा दी जाती है ।। परं गङ्गादास को जहां पर उदासो शब्द दीख पड़ा, वहां काकवत् कूद पड़ा । परं इस को ज्ञात न था कि वेदवत् पर्वत मेरी थोथी पोल को खोल कर जनताके संमुख रख देगा ।। देखो (उदासीनवदासीनः) गी० इसमें 'उदा-सीनवत्' पदसे अपना उदासपन्थ निकालाहै और अपने मूर्ख चेलोंको दर्शाया है, कि हम भी अब संन्यासी बन गये हैं ।। परं यहां पर तो "उदासीन-वत्" पदका अर्थ है कि संन्यासी लोग चोरके समान रहें, क्योंकि चोर (उदासीन) अपने चोरी के पेशे में दत्तमन होता है, तैसे संन्यासी भी अपने आत्मा में दत्तचित रहें, मनुजी ने लिखा है कि स्ववर्ण वा रजित यदि शकृत्सम्पृक्त भी हों तो गुणतया ग्राह्य ही हैं, तैसे ही चोर डाकू आदि बदमाश भी क्रूर कर्म्म कर स्वकार्य्य में ही निमग्न होते हैं शोक है कि यति लोग चोरों (उदासीनों) के समान भी आत्मा में आत्मा रामी नहीं होते, यह गीता का आकूत है, अथवा जैसे उदासी चोरी यारी वा मद्यपानादि व्यसनों से नहीं निवृत्त होते, तैसे संन्यासो भी अपने कार्य्य आत्म विचार सें निवृत्त न हों, कहो उदासियो तुम को अन्धे ने कैसा पद प्रदान करवाया है, यदि गीता के प्रमाण सें तुम उदासी हों तो

केवल भीष्म पर्व के पाश्चात्य टोले के ही डाकू होंगे ।। परं विचार करो कि "उदासीनवत्" शब्द का उदासी अर्थ कैसे होगा, क्योंकि शूद्रवत् शब्द का शूद्र अर्थ नहीं होता यदि होता है तो (साहित्यसंगीतकला-विहीनः साक्षात्पशुः—पूच्छविषाणहीनः) इस भर्तृ के लेख से तुम सब पशु ही होंगे, क्योंकि उदासी जाटों की सन्तान होने से, साहित्य की कलायों से शून्य ही होते हैं ।। सो अब तुम अपने गुरुओं (गुरुमुखी बोली) वालों को भूसा वा खलि का भोग लगाया करो, अतवत् प्रत्यय का अर्थ तद् रूप नहीं होता किन्तु कुच्छ गुण क्रिया की सादृशता ही अर्थ शब्द शास्त्र से निर्णीयत है ।। स्मरण रहे कि, चालबाज़ों की पापवृत्ति, कालनेमि और रावण या राहु के समान भस्मसात् हो जाती है ।। गो स्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं कि—(उवरे अन्त न होये निवाहु—कालनेमि जिमि रावण राहु) वस अब तुम्हाराभी यही समाचार हुआहै।। यदि आपने यति बनना है तो चुपचाप स्वयं संन्यासी नामसे कहना आरम्भ करदो, कोई पण्डित आपको तङ्ग न करेगा।। परं आपका अस्तित्व मिटाने वाले वा सब संप्रदायों में कलह का बीज आरोपण करने वाले इस अन्धे को दण्ड प्रदान क्यों नहीं करते क्योंकि (द्रव्यद्रोही भवेत्पात की शास्त्रद्रोही च नारकी) इस प्रमाण सें शास्त्रों का चोर सदा के लिये यम का खाद्य बनता है । अत एव तुम को भी अन्धे के पाच्छे चलने से यम का दर्शन करना पड़ेगा ।। यह तो कलि का प्रधान दूत बन चुका है, परं तुम बचो, झूठ बोलना चीनों का काम है, अत अन्धेका वहिष्कार करदो तुम सच्चे प्रभु के दास बनों अन्धे के चेले मत बनो ।। परं इस अन्धे का भी गिरगिट के समान रङ्ग बदलने मैं कोई दोष नहीं है क्योंकि चन्द्रभाष्य के पृ० १०३ में लिखा है कि " हम सब अवैदिक उदासी समय २ पर खूब अपना रङ्ग बदल कर प्रत्येक नरपुञ्ज से ठोकरें खावेंगे। क्योंकि हमारे पिता का शाप दिया हुआ अन्यथा नहीं होगा " इसि लिये उदासी भी खूब हठ करते हैं कि अब हम भी संन्यासी हैं, परं प्रमाण कोई नहीं दिया केवल (हठन्तु साध्यति नित्यं स्वार्थी दोषं न पश्यति) इस का ही आश्रय लिया है, ठीक कलियुग मन्द २ पदारोहण करता था, किन्तु दासों ने शीघ्र ही वेलाने का प्रयत्न किया है । (मन्दं २ पदं धत्ते कलिजो हि विशेषतः—दुष्टैराहुय मानस्तु तीव्रं २ प्रसर्पति)

सच्छूद्रा उदासीनाः

मनु ने वेद से उदासियों को सच्छुद्र लिखा है) आर्धिक : कुलमित्रञ्च गोपालो दास-नापितौ) मनु०४—२५३ इस में साफ लिखा है कि दास नामी उदासी तो सच्छुद्र हैं ।। अतः चोर डाकू उदासी

टोला शूद्र हैं यह निर्विवाद हुआ अब मनु का आधारभूत अथर्व वेद ५-११-६ नीचैर्दासा उपसर्पन्तु भूमिं) के मंत्र में लिखा है कि, यतियों के सामने उदासी चोर दास होने से नीचे बैठें, परं अब इस वेद आज्ञा से विरुद्ध उदासी लोग भी गद्दे लगाते हैं ।। इसी प्रकार " सुदासा: " ऋग्वेद के शब्द से भी सुनाम सत् – दास नाम शूद्र अर्थात् सच्छूद्र उदासी सिद्ध होते हैं, यह समस्त प्रकरण चन्द्र भाष्य के पृ० २११ में लिखा हुया है कि (वेदेऽस्माच्छूद्रत्वेनशब्दनान्न वयमुदासीनाचोरकर्म्मकरा भुमिस्थितिशीला वेदराशीं मन्यामहेतराम्) ।। पुनः दासों और (उदासियों) की स्त्रियों के विषय में भी वेद लिखता है कि, (यद्वा दासी आर्द्रहस्ता समन्त उलुखलं मुसलं शाम्भताप:) अथर्व वेद उदासी (दास) की स्त्री यदि यज्ञ के पात्र को गीला हाथ लगा दे तो पुन: संमार्ज्जन से शुद्धि होती है, अधिकतर उदासी साधु गृही दासों की ही वर्णसंकर संतति होती है परं जैसे अफीम में हिङ्ग मिलाने से आफीम मट्टी बन जाती है, वा हिङ्ग में जीरा मिलाने से हिङ्ग निर्गन्ध हो जाती है, तैसे अब उदासी भी अपनी काली करतूतों को दूर करना चाहिते हैं ।। परं उदासीदासो ! अब भय मत करो, अब तुम्हारी रक्षा सुतराम् होगी जैसे कि गर्भवती की रक्षा से गर्भ की रक्षा अनिवार्य्य है, तैसे संन्यास की रक्षा से ही आप की रक्षा अनिवार्य्य है ।। क्योंकि तुम ने यतियों की शरण ली है, सो शरणागत की रक्षा करनी यतिमात्र का कर्तव्य है, ठीक तो है कि (विना भीत्या न मन्यते) भय से विना उदासी यतियों के चेले न बनते परं सिक्ख भय बड़ा भयङ्कर है ।। जिस ने दासों को संन्यासियों की अभिनवशिष्य कोटि प्रदान की है, परं स्मरण रहे कि जब वैदिक नियम पालन करने पड़े तो अपना असली स्वरूप यवनता को ही प्राप्त होंगे, सत्य तो यही है कि (स्वजातं मूषिका प्राप्ता) को सार्थक करे विना नहीं छोड़ेंगे, देखो उदासियों का गुलाबतापन्थ — बाबा गुरुदित्ता के पास चार नौकर (मसन्द) रहते थे, जिनके बालुहसना, अलीमस्त खाँ तथा फूलशाह, और गोईन्दीन नाम थे, सो बड़े दम्भी और चातुर्य्याङ्कित थे, इन चारों यवनों ने अपने आराम वास्ते और भी नौकर बना लिये थे, सो इन चारों नौकरों (मसन्दों) को उदासी दासों ने अपने गुरु (आचार्य्य) माना है, देखो मियां पन्थी परमानन्द कृत सटीक मात्रा पृ० १५ में तथा पन्थ प्रकाश के उत्तरार्ध पृ० ५३७ में तथा उदासी दासों के अन्तक गङ्गादास ने श्रौ० पृ० २५ भूमिका में, इन चारों दित्ता के नौकरों (मसन्दों) को अपने चार धूनों के गुरु लिखा हैं ।। इन चारों के नाम पूर्व लिख चुके हैं, जो कि ये चारों ही महम्मद के खलीफे थे, फिर दित्ता के नौकर

बने थे, इस लिये दित्ता ने इन के नाम नवीन कल्पना किये थे, कि (हुते मसन्द चार तिस ठौरा—सेवक गुरु दित्ता के गौरा १) केवल गौरा नाम ही यवनों का है, शेष समस्त नाम बदल दिये थे, क्योंकि मसन्दी का काम दयाहीन मनुष्य ही कर सकता था, इन मसन्दों ने सिक्खों को मार मार कर सब घर के दाने बेच कर अपना १।) सवा रु० पूरा कर लेना, बलके चार पाई के नीचे हाथ धर ऊपर आप मसन्दों (दित्ता के नौकरों) ने बैठ जाना कि १।) रु० देवो—कुच्छ दिन तो इतना अत्याचार बढ़ गया था कि अपनी कन्या वेच कर वा स्वस्त्री द्वारा अनुचित व्यवहार से इन को १।) रु० देना पड़ता था, ये बड़े दुष्ट कर्म्म करते थे, ये ही खलीफे उदासियोंके गुरु हैं॥ क्योंकि नाम परिवर्त्तन से जाति का परिवर्त्तन नहीं होता, अन्यथा-गङ्गानन्द वा गङ्गादास या गङ्गाशाह वा गङ्गासिंह या शर्म्मा वर्मा लगाने सें क्या जाट जाति मिट जायेगी, अन्धा स्वयं लिखता है, "जाति परिवर्त्तन कभी ही नहीं सकती" इस लिये उदासियों के गुरु दित्ता के यवन नौकर थे, अब उदास पन्थ को अनादि लिखने वाले उदासी जीवित अग्निसात् क्यों नहीं होते, तेन (उदासीना यवन प्रियाः) यह नियम सर्वदा संजीवित ही है। जो वाम मत के तंत्र निबन्ध हैं, तिन को दक्षिण मत के विद्वान् प्रमाण नहीं मानते, क्योंकि इन में भ्रष्टता खूब भरी पड़ी है, परं अब उदासी लोग नवनीत कल्प तंत्रों को प्रमाण मानते हैं, और यह भी इदमित्थ रूप से दृष्टचर होता है, कि निर्वाण तंत्र का कर्त्ता भी कोई पथभ्रष्ट उदासी ही है, क्योंकि निर्वाण तंत्र का अनुवाद करके ही, "निर्वाण-विद्या" नाम की पुस्तक लिखी गई है, जो कश्मीरी से हम को उपलब्ध हुई थी, सो इस को उदासी जाम्यताविकल उत्कोच बिना ही प्रमाण मानते हैं, इस पुस्तक को मैं प्रेस के आधीन कर प्रकाशित करवाऊंगा॥ अब कुच्छ निबन्धों के प्रमाणों से उदासियों का स्वरूप जो चन्द्रभाष्य पृ० २११ में दिखाया है, उस को मैं सब के समक्ष करना उचित समझता हूं परं यह (चन्द्रभाष्य) वा (विश्वेश्वर भाष्य) अभी अयस् मुद्रित नहींहुये किन्तु शिलालिपिसे हैं, सो पृ० २११ ऋ० मं ६ मं० १० के भाष्य में लिखा है कि, (वयमुदासीना यवनजाः साम्प्रतिकजा अधुना तत्तकन्या करुणया हिन्दुतां प्राप्य वामपद्धतौ प्रवृत्तास्तेनास्माकं-वामंदेहि-सोमंपिव-वामं-सोमं-मग्नं मदं मदः-इत्यादिक मंत्राः समभिधेयाः सुचिन्तनीयाः, येन वामिनो वयं तद्धि सर्वे निर्वाणविद्यावालुहसनतंत्र वन्नोतंत्र पुष्पववाम प्रकाशिक, मस्तवामता, गोदीन कालिकादयः सुग्रन्थाः सुमाननीयाः, यच्च-ज्ञ:ति श्रेष्ठः—इत्यादिवामविकजमत प्रकाशकान्यपि वचनानि नो हि

धेयानि येनाहम् मद्यपायी मांसात्ता मैथुनाशी भवेयं, तेन भवतां मत्पादानुजीविनां वामकौलिकतीर्थानां वामिनां चौरकर्म्म कराणामुदासीनानां नास्ति कापि क्षतिरिति ॥ सज्जनों !!! आपको विदित हो गया होगा कि, उदासी वामी हैं वा शैव्य या पथभ्रष्ट अधिक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि स्वयं इन के गुरु वाम के भक्त थे, और अन्य चेलों को आज्ञा देते हैं कि तुम भी कौलिक हों भूल न जाना, अपने वाम मत के ही पुस्तक मानने, इस लिये अन्धे ने तंत्रों के ही प्रमाण अधिक लिखे हैं ॥ मैं "चन्द्रभाष्य समीक्षा" लिख रहा हूं उस में खूब उदासियों की बिराट् स्वरूपता दर्शाऊंगा ॥

॥ शमन दमन सामञ्जता ॥

गङ्गेश्वरानन्द वा अन्य कोई पठित उदासी अपनी लेखनी उठाकर स्वपोल को स्पष्ट करो कि कहां तक सत्य है, परं हम शास्त्र द्वारा समुद्घोषित करते हैं, कि उदासी पन्थ न श्रौत है न स्मार्त है, और ना हो पौराणिक वा ऐतिहासिक है, किन्तु यवनों का चलाया हुआ है, और अवैदिक है, परं उदासी शब्द जिन निबन्धों में आया है, वहां केवल चोर डाकूओं के लिये ही आया है, और रूढ़ीवृत्ति से वा यौगिकवृत्ति से उदास शब्द वामी वा चोरों का ही वाचक है । और (बन बन फिरैं उदासी) इस भक्त की उक्ति सें मूर्ख को भी उदासी कहा है ॥ और बाईबल में तथा कुरआन में या किस्सों में वा यवनशरा में और कृश्चीन सम्राट् में वा अर्बी फाकिया में तथा शतान फोकिया में और बौद्ध प्रकाश में और विश्वेश्वर भाष्य में तथा चन्द्रभाष्य में उदासी शब्द को चोर बदमाश वा स्त्री पन्थी वामी शतान काफिर शराबी कबाबी आदि का वाचक लिखा है, **शंका**=क्या उदासी पूर्वोक्त सर्व निबन्धों को प्रमाण मानते हैं, संभव है कि विश्वेश्वर भाष्य वा चन्द्रभाष्य को तो प्रमाणरूप से मानते हों ॥ **समाधान**=जैसे संन्यासी (चतुर्थाश्रमी) वाम मत के ग्रन्थों को नहीं मानते, तो भी वामियों के भ्रष्टातिभ्रष्ट पामरनरकृत निबन्धों के प्रमाण देकर उदासियों ने अपने गुरु के गुरु यतियों की निन्दा की है ॥ वैसे संन्यासी भी वामी उदास पन्थ की निन्दा कर सकते हैं, परं इन को प्रमाण न मानों भला श्रीचन्द सोहले, श्रीचन्द मात्रा, उदासप्राण, वीर उदासी, नारदभ्रम, दाल्भ्यगीति, वज्रोंपटल, शाहविवेक, उदास पन्थ प्रकाश, उदासीन मत दर्पण, गुरु मत प्रकाश, इन को भी न मानोंगे, क्या इन में उदास पन्थ को वामी नहीं लिखा, ठीक सचाई नहीं छुपती, वामप्रियोदासीनाः=यदि इसका उत्तर इस अन्धेने

न लिखा तो मैं प्रत्येक नगर में इस का स्वरूप दर्शाऊंगा, परं नयन विकलता और बुद्धि विकलताका भी पूरा२ समाचार दर्शाऊंगा परं सत्य२ मर्म दर्शाने वाले को हम यति लोग कुछ न कुच्छ उत्कोच वा उपधि, अवश्य प्रदान करेंगे, क्या तुम भंग वाले महन्त भूमनशाह के चेलेका नाम नहीं जानते जो इस समय भी यवनानी प्रियाप्रिय उदासी ही है, अब छिपो न मैदान में आओ—(अशक्नुवन् सोढुं विचारविकलाः सहस्र-रश्मिर्यच्छरणानि सेवां—प्रविश्योदासीना गृहाभिकांलिकं निनाय कालं पर्वतभीतिभीताः) ॥

॥ कलिपद सर्पण ॥

देखो कलिके प्रभावसे प्रभावित होकर अनाश्रमी वामी उदासी भी अपने आपको संन्यासी मानने लगे हैं, क्या कलि में नीचोंकी ही उन्नति होगी॥

। सिक्खों के सिंहनाद से वामी उदासियों का चर्वण ।

इस भारतकल्पनाद ने उदासियों की बुद्धि को छिन्नभिन्न करके यतियों के शिष्य वना दिया है, क्या रहस्य की वात है, कि सिक्खों ने उदासियों का सर्वथा स्वरूप सर्वदा के लिये इस संसार सें विदा कर लोकान्तरों का सचा अतिथि बना दिया है, क्या अब भी वामी उदासी अपने को सिक्खों की सन्तान मानेंगे, अरे उदासी बावयो ! तुम अब सिक्खों को क्यों नहीं ठगते, क्या तुम्हारी हठता शठता को अब सब नहीं जानते, ठीक चोरों को भय बहुत होता है (भीतिनियमविवर्द्धिका उदासीनाः)

॥ नं० १ असली उदासी ॥

भक्त भगवान् गिरि के समस्त ९०६ चेले असली उदासी थे, क्योंकि उदह ग्राम से यह टोला कराची को जाता था, वहां पर भगवान् गिरिजी रहते थे, इस टोले ने बहुत ग्रीवों की हत्या की और मालमत्ता हर लिया, वे समस्त गुरु भगवान् गिरि जी के पास आये, और कहा कि स्वामिन् हम मारे गये, समस्त परिवार क्षुदा से व्यथित हो रहा है, इस चोरों के गरोह ने अनुचित व्यवहार द्वारा सब धन हर लिया है, तव गुरु ने क्षुभित चित्त से दीक्षा मंत्र को पढ़ा और सब के सब डाकू कोमल चित्त हो गये, और सब का माल लौटा दिया, और यह सर्वदा

के लिये उदासी उदासी ही बन गये, क्योंकि सच्चे गुरु की सब को जरूरत होती है, परं इस टोले को साधु पूछें कि तुम किस के चेले हैं, तो वे कहते थे कि हम ६०६ भक्त भगवान् गिरिजी के चेले हैं ॥ स्मरण रहे कि इस टोले का सिरदार नानकपूता श्रीचन्द था, इस ६०६ ने तो ग्रन्थसाहिब में भी स्थान ले लिया था, इन के वास्ते नानक की सम्मति कि " गिरि ही " के चेले सब चोर नहीं किन्तु गुरुमुखी बोली वालों को छोड़ कर शेष सच्चे साधु भी उदासी हैं (सो " गिरि ही " सो दास उदासी, जिनि गुरुमुख आप पछानिया—नानक कहे अवर नहीं दूजा, सांचि शब्द मन मानिया) सच्चा शब्द (वेद) को मान कर जो उदासी भगवान् गिरि के चेले हैं, वे ६०६ सब साधु हैं, चोर नहीं—अब भी उदासी बहुत हैं, जो भक्त भगवात् गिरि जी के शिष्य कोटि के हैं ॥ परं (गुरु जी ! चोरी छोड़ू तूम्बा पलटी न छोडूं) उदासी साधुयों की विशेषणता के लिये भगवान् गिरि ने सिद्धियां दिखा कर मजीठी वा हिरमिची वस्त्र रङ्ग दिये थे, कि ये चोरी पेशा छोड़कर साधु होगये हैं, पुनः इस टोले ने बिहार प्रान्त के तिर्हुत में धूनी साहिब बनाया, और सभा की कि हम को जाति पाति मंत्रादि पूछने से नहीं आते, इस लिये बनखण्डीदीन ने सं० १७६० में समस्त कर्णधारों ने पास किया कि, यवनों को छोड़ कर चर्मकारों का बहिष्कार करदो, सो सर्वसम्मति से पास हो गया था, परं उस समय जो नहीं माने-क्योंकि टोले में सब जाति के नर प्रवृत (प्रविष्ट) थे उन के अब तक चमारुये साधु उदासी हैं ॥

नं २ उदासी

अब वैदिक कर्म्म करने से व्यसनों का सेवन नहीं हुया तो, बनखण्डी के समक्ष में पुनः सं० १७७२ में सभा की कि हम उदासी वेदों को नहीं मानेंगे, और अपने मनमाने काम करेंगे, और भक्त भगवान् गिरि की आज्ञा नहीं मानेंगे, क्योंकि उन्हों का सं० १७६६ में कैलास वास हो चुका है ॥ हम भी अपने नय मंत्र बनायेंगे, वेदों को नहीं मानोंगे, तब श्रीचन्द बोला कि मैं आपको मंत्र बना कर देता हूं लो रुद्राक्ष का मंत्र तो तैयार ही है (ओं आदेश गुरु को आदेश मूले ब्रह्मा पाते विष्णु महेश, लिङ्गाकारो महेश्वरम् रुम २ देवा सबदेवा, दर्शन को आये महादेव का लिङ्ग रुद्राक्ष की माला, जापै जाप श्री चन्द बोला गोरखनाथ सुनो सब हाला ११) और जटा का मंत्र पूर्व लिख दिया है, इसी प्रकार चोटी चिलम चिमटा झोली जूते आदि के भी मंत्र

बना लिये थे, और अवैदिक मत के सूत्रधार बन गये थे॥ यही नं० २ के उदासी परिव्रातित पन्थी नाम से प्रसिद्ध हैं, और यही स्वगुरु को भी चेला उपाधि देते हैं, जैसेकि त्र्यम्बिक गिरि वा अवनाशी गिरि वा भक्त गिरि, और चोरों गुरुओं को अब चेले कहते हैं, यही डाकू टोला है॥

॥ नं० ३ पतित उदासी ॥

गुरु घर में मुण्डे सिख को पतित माना है, और सिक्खों के रहित नामे में भी मुण्डे (केशकटे) सिक्ख को पतित लिखा है' सो यह उदासी सिक्ख पतित सिक्ख हैं, और सिक्खों ने इन पतितों को भिन्न कर दिया था, और इन को कोई भी गुरुद्वारों में स्थान नहीं देता था, जब गुरु गोबिन्द सिंह जी ने दया दृष्टि की वृष्टि की तो निर्मलों ने इन पतित उदासियों को शुद्ध कर के बनारस में अन्न क्षेत्र का प्रबन्ध किया था, और बबखण्डी दास प्रभृति दासों को अक्षर विज्ञान का प्रदान किया था, परं (नीचः श्लाघ्य पदं प्राप्य) के अनुसार यह निर्मलों को ही विगुरु आदि शब्दों से कहने लग पड़े थे, जो कोई कृतघ्न नर होवे सो (कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः) पतित है॥ यह समस्त समाचार यदि विशेषरूप सें देखना हो तो (हरिद्वार समाचार के प्रयाग संस्करण सं० १९८६ माघ बदी १४ के पत्र में नं० १ से नं० ७ पर्य्यन्त पढ़ लें॥ क्योंकि उस में मद्य पापी शराब, वर्ण शंकर चोर डाकू गुण्डे चूहड़े मधूक चमार डूमादि सप्रमाण सिद्ध किये हैं, कि उदासी पतितातिपतित पन्थी हैं॥

॥ उद्गाराकूत ॥

हम तो सर्वयति इस बात को चाहते थे, कि रूढ़ि समाजी यवन वा चाण्डालादि नीचों को भी शुद्ध करते जाते हैं, क्या हम अनाश्रमी वामी पतित उदासियों को शास्त्र दृष्टि से क्यों न शुद्ध कर के संन्यासी बनालें, क्योंकि सिक्खोंने तो पतित बना दिये हैं॥ परं पतितपावन राधा धव ने, इस यतियों के आकूत को उत्कोच विकलता से ही सहस्र श्रवण-रूप से कर्णपुट गत कर लिया है, क्योंकि उदासी स्वयं यतिरूप में प्रविष्ट हो गये हैं, और वैदिकमत के चेले बन ही गये, धन्य है प्रभु की माया॥

॥ उद्गारोमंग ॥

उदासी संन्यासी तो बनते हैं, परं अपनी भ्रष्ट क्रियाओं को तो छोड़ा नहीं प्रथम अपने अनाचारों को विसर्जन करें, क्योंकि इन में वामियों के समान अब भी शास्त्र विरुद्ध क्रिया दृष्टि पथ होती हैं ॥ जैसे कि मरों को अग्निदाह और अस्थि संचय वा क्रिया कर्म्म नारायणवली और सोहला आदि २ सब काम चोली मार्ग के अब भी होते हैं, और गया में श्राद्ध वा और सर्व द्युतक्रीड़ा आदि२ व्यसनों को छोड़ें, क्योंकि व्यसन व्याघ्र नर कोई भी संन्यासी नहीं हो सकता ॥

॥ त्याग स्वरूप ॥

उदासी अपने समस्त अभ्यन्तरीय भेदों को सर्वथा सर्वदा के लिये संसार से तो क्या ! प्रत्युत् स्वप्न से भी विदा करदें, तब यतियों के उत्तराधिकारी बन सकते हैं, क्योंकि इन वामियोंमें सुथरेशाही प्रभृति ४५ भेद वा इससे भी कुच्छ अधिक भेद हैं, ॥ जो पूर्व निरूपण होचुके हैं ॥

॥ उदास पन्थ में मुनि प्रणाली ॥

इन वामी उदासियों ने अपने को मुनि नामों से जो स्मरण किया है, सो भी अब ज्ञात हो गया है, कि इन उदासी वामियों ने अपनी मुनि प्रणाली कालनेमी राक्षस से लेकर स्वपन्थ में निवेश कर चलाई है, क्योंकि अध्या० रा० पु० काँ० स० ७ श्लो० २४ में लिखा है, कि कालनेमी मुनियों के स्वरूप बना कर भ्रष्ट कार्य्य करता था, कि (मुनि-वेषधरो—नासौ मुनिविप्रविहिंसकः) निश्चय है कि कालनेमी के चेले यह उदासी मुनि शब्द से शब्दित हुये थे, सो अब सब विद्यमान ही हैं ॥

❀ समन्वयाकूत ❀

“ समय एव करोति वलावलम् ” देखो सिक्खरूपी वर्षा ऋतु के समय में, यह उदासीरूपी पिपीलिकाओं का कैसा रूपान्तर हुया जो संन्यासरूपी यम की यातना का पालन करना पड़ा—क्योंकि यतिरूप वैदिक यातना में कलिव्यसनव्याघ्रों का सुतराम् तुण्डमर्दन हो जाता है ॥ मुझे (क्रुद्धोऽपि कुशलं वदेत्) इस मनु की सम्मति से अब पर्य्यन्त मौन ही श्रेयस्करदृष्टिपथ आता रहा, परं (शठं प्रति शठं कुर्य्यात्) यह वृद्धोक्ति भी उपादेयताया परमकर्तव्यता प्रतिपादन करती है, इस लिये उदास पन्थ की हेयतया परिशीलन करना पड़ा, अब यह वामी

अपना विराट स्वरूप देख कर खूब रुदन करोगे कि, हाये ! भेद खुल गया तोवा खुदा की, हाये मारे गये-इस गीत को गाते हुये (आम्रान् पृष्टे कोविदारान् व्याचष्टे) के अनुसार अण्ड वण्ड तुण्ड से निकालेंगे, परं सच्चे पथ का आश्रय नहीं लेंगे, अस्तु उदासी वामी भागत्यागलक्षणा से ही, यतियों के चेले बन सक्ते हैं, वाच्यार्थविशिष्ट नहीं, उदासी शब्द का वाच्यार्थ तो चौरत्वादि परक है, और लक्ष्यार्थ चेतनात्मक यतियों परक सो वामी उदासियों की समझ में आना कोई हलुआ तो नहीं है, प्रत्युत् विद्वानों का काम है कि समझें ॥

❀ ऐतिहासिक उदासीपन्थ ❀

इतिहासों में भी अनाश्रमी उदासी चोरों का कथन आता है, भागवत के १० स्कं—७८—६ (श्रुत्वा पुद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः—तीर्थाभिषेक व्याजेन मध्यस्थ; प्रययौ किल्) इस में मध्यस्थ शब्द का अर्थ उदासीनत्व किया गया है, अर्थात् बलरामजी युद्ध का समाचार सुनते ही चोरों के समान घर से चल पड़े, इस से भी उदासी नाम चोर का है, भागवत में अलङ्कार का विषय विद्वानों द्वारा ही विदितचर हो सक्ता है, कि लुप्तोपमा का वाचक प्र से पूर्व इव शब्द भी विद्यमान है, जिस का अर्थ होता है, कि सादृश ॥ और महाभारत में भी (सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यवन्धुषु) यही पाठ गीता में भी है, इस स्थान में मध्यस्थ से भिन्न उपादान किया है, और साफ है कि उदासीनशब्द चोर का वाचक है ॥ और गीता के (साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते) अन्त भाग में पुण्य पाप को सम समझने वाले चोर डाकूयों को उदासी कहा है, और बालकराम ने भी सांख्य कारिका २० के टीके में उदासी शब्द का अर्थ चोर किया है कि (विवदमानयोरुभयोरप्युपेक्षक उदासीनः) दो धनिकों के विभाग का झगड़ा पड़ने पर वा मार पीट होने पर जो दोनों का धन हरले वह उदासी (उपेक्षक नाम का चोर) होता है क्या अब तो घर में भी उदासी का अर्थ चोर होता है, तथा चन्द्रभाष्य के १६ में पृ० की ६ पं० में भी (यद्यपि भवति चौरत्ववृत्तिनियामक उदासीनस्तथापि नास्ति खलु सर्वेषु) अब तो गुरु भी बोल उठा कि उदासी चोरों का टोला है, परं समस्त उदासी मात्र ही चोर नहीं हैं, प्रत्युत् कोई २ है ॥ और वायु० सं० अ० ५—में (उदासीनो हि चौरः स्यात् सर्वधर्म्मैधवर्जनात्) तथा लघु सायनीय अ० ३—(ऋते हि वायुदासस्य कलौ च नास्ति तस्करः) उदासियों से बिना कलि में कोई चोर नहीं है, यदि उदासी न होते तो

तस्कर शब्द अवश्य कलियुग में न सुनाई देता ॥ तथा रागके अ० १-मं १ वा० १ (प्रथमं दुर्जनं वन्देन्युदासीनं च तस्करम्) समस्त इतिहासों में उदासीन शब्द का चोर ही अर्थ किया है' देखो रामायण में भी (कवि कोविद विरक्त संन्यासी) इन के विरोधी अनाश्रमी ये चारों डाकू लिखे है कि (साधक सिद्ध वियुक्त उदासी) तु० दा० यथा संख्या से चारों ही विरोधी हैं, पर - (सत्यवक्ता न वञ्चकः) मुनियों ने तो श्री रामचन्द्र जी को अपना क्षात्रधर्म्म त्यागने से उदासी ही कह दिया था, जब रामजी पुनः घर में आये थे, तब उदास (अवैदिक कर्म्म) का त्याग किया था, क्योंकि बनवास में राम से वैदिक कर्म्म नहीं होते थे, सम्भव है कि राम के समान वा आत्मस्वरूप गुरुमण्डिल या कवलदास के समान अन्य भी उदासी चोर कर्म्म सर्व राक्षसकल्पक्रिया जान कर छोड़ दे आत्मस्वरूप ने तो योगदर्शन के टिप्पण में और कवलदास ने विवेक चूड़ामणि के टीके में उदासत्व (चौरत्व) पन्थ को छोड़ कर हंस संन्यासी बने थे ॥ और (तापस भेष विशेष उदासी, चौदाह वर्ष राम बनवासी) देखो कैकेयी की बुद्धि ! इस ने समझा कि राम वन में भी ऋषि मुनियों के समान कर्म्म करके प्रजा को अपने वशवर्ति बना कर पुनः भरत से राज छीन सक्ता है, इस लिये १४ वर्ष बनवास तो दिया साथ ही साथ (विशेष उदासी) के समान होना भी मांग लिया हैं, अन्यथा बनवास को १४ वर्ष के लिये जाना मुशकल था, परं तापस भेष भी विशेष उदासी कहना व्यर्थ था, इस लिये कि चोर डाकू उदासीयों के समान वन में रहें— क्योंकि सदाचार से भरत राज्य में संदेह था, इस लिये कैकयी ने खूब विचार के ही उदासी चोरों का भी वर मांगा था, कि संन्यासीयों का शत्रु उदासी चोर के रूप से वन को जाये, और कोई भी धर्म्म न करें राम ने कहा कि मातः ! मुझे उदासी (चोर) बनना तो शिरोधार्य्य है, परं धर्म्म कर्म्म की आज्ञा होनी चाहिये थी, तब कैकेयी ने कहा कि यदि ऐसा है, तो तुम तीनो ही मिल कर नित्य कर्म्म केवल किया करो और कर्म्म न करने, इस में भी कैकेयी की बुद्धिमत्ता ही झलकी है कि, जब सीता भी इन के साथ सन्ध्या करेगी तो ऋषि लोग अवैदिक विधि जानकर निन्दा करेंगे, बाली ने भी साफ कहा था कि (मारेयो नाथ व्याध की न्याई) हम को यह नहीं ज्ञात था कि आप ने चोरों का स्वरूप धारण किया है, अब ज्ञात हुआ कि कैकेयी की आज्ञा से ही तुम चोर उदासी बनें हो ॥ (चौरः प्राणिवधेरतः) वा० रा० कि० कां० सं० १७-३६ में चोर शब्द साफ उदासी विकल धर्म्म कर्म्म राम के लिये प्रयुक्त किया है, और (सत्वां विनि-

हतात्मानं धर्म्मध्वजमधार्म्मिकम्-जाने पापसमाचारं तृणै: कूपमिवावृत्तम्) तथा (सतां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम् =मुझे ज्ञात न था कि तुम उदासी रूप से घर छोड़ा है, और कैकेयी ने भी वर मांगने में ज़ुलम कर डारा जो तुम को पाप कर्म्म करने की आज्ञा देदी है, यदि पाप करना था तो तापस वेष क्यों बनाया है, केवल चोरों उदासियों के रूप से रहते, तब राम ने कहा कि पिता की आज्ञा मानता हूं, और पाप कर्म्म करता हूं पिता की आज्ञा हम को यह है कि (तापस भेष विशेष उदासी) इस लिये जो राजों से विरुद्ध हम ने काम किया है, सो माफ फरमायें क्योंकि मेरे वश की बात नहीं है ॥ इसी लिये राम ने सुग्रीव से भी कह दिया था कि (हनिष्यामि सबान्धवान्) क्योंकि अच्छे कर्म्म करने की मुझे आज्ञा ही नहीं है, मैं तो धर्म्म कर्म्म से उदासी हूं १४ वर्ष पूरे कर घर में लौट कर पुन: धर्म्म कर्म्म करूंगा, और चौर कर्म्म उदास का सर्वदा के लिये काला मुख करदूंगा— परं अब मेरे वश की बात नहीं है ॥ प्रत्युत् राम ने स्वयं भरत से कहा था कि वन में चोर डाकू वा अधर्म्मी लोग भी बहुत रहते हैं, इसी प्रकार मुनि भरद्वाज ने भी भरत से यही बात कही थी कि, उदासी चोरों से बचना, क्योंकि आप राम विरह से व्याकुल समस्त जन हो रहे हो, कहीं माल मत्ता भी उदासी चोर न उठा लें देखो रा०तु० (वैखानस वटु यति उदासी, वैखानस वटु गृही उदासी = अर्थात् वानप्रस्थी, ब्रह्मचारी, और संन्यासी गृहस्थी तापसादिक रूप बना कर वेद विरोधी उदासी बहुत वन में हैं, इस लिये इन से सर्व प्रकार से बचना, यह चोरों का गरोह बड़ा प्रबल है, इन मूर्खों ने बहुत प्राणी यमालय भेज दिये हैं, और लूट मार कर सब वाल्मीकि के समान आजीविका चलाते हैं, और राम हम से प्रतिज्ञा कर गये हैं, कि मैं सब उदासी चोरों को यमराज का मुख दिखाऊंगा ॥ (सुनहु भरत !! हम मृषा न कहहीं—उदासीन कपटी बन रहहीं) हे भरत ! सुनो उपेक्षा मत करो, मैं झूठ कभी नहीं बोलता सत्य ही कहता हूं कि तापस वेष बनाये कपटी उदासियों से बचना, यह कपटी जीव हनन को ही अपना धर्म्म कर्म्म मानते हैं, आप को जहां मोठी २ बातें बनाने वाले मिलें वहां निश्चितरूप से दुष्ट चोर उदासी ही समझना ॥ परं यह बात स्मरण रहे कि सरिता नदी के आस पास चोर उदासी बहुत थोड़े हैं, क्योंकि वहां तो मननशील संन्यासी ही अधिक हैं (कहुं कहुं सरिता तीर उदासी, वहां ही ज्ञान रत मुनि संन्यासी) और रामजी ने जब भरद्वाज मुनि से सुना कि यहां चोर डाकू उदासी मित्र रूप से बहुत रहते हैं, तब राम ने

वहां से आगे ही जाना उचित समझा था, देखो वा० रा० (ते चान्याश्च सुहृदामुदासीना अशुभाः कथाः—आत्म संपुजनीः शृण्वन् ययौ रामो महापथम्) तथा (अधर्म्मजेनोदासेन खलु संदुषितं मनः) वा० रा० तथा (तेन दानादिदानेनोदास कर्म्म त्यजाम्यहम्) इस में तो साक्षात् राम ने कह दिया था, कि उदास कर्म्म करना महापाप है, देखो इस उदास कर्म्म ने मेरा भी मन दोष संपृक्त ही बना दिया है, तो अन्य जीवों को नरक पथ अवश्य देखना पड़ेगा, इस लिये मैं दान प्रदान द्वारा इस चोर उदास धर्म्म पाप को विर्सजन करुंगा, देखो !! तन्त्र ग्रन्थों को प्रमाण मानने वाले वामी उदासीनों के लिये वे०तं० प० ३ में क्या आज्ञा दी है कि, (सततं तन्त्रचेन्मानं वाममिच्छ यथारुचिः—योनिजुष मुदासीनं यमो नेच्छति सर्वदा) हे चोर उदासी वामियों यदि तुम केवल वाममत के तन्त्रों को ही नवनीत के समान प्रमाण मानोंगे, तो, तुम्हें यमराज भी स्वधाम न दर्शायेगा, परं आप को यह योनिजुषता का नियम अवश्य मानना पड़ेगा, और व्यास जी ने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि (उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः) २-२-२६ ॥ यदि अभाव से भी भाव की उत्पत्ति होवे, तो उदासी चोरों के वैदिक कर्म्म न होने से भी स्वर्ग वा मोक्ष की प्राप्ति होनी चाहिये, क्योंकि उदासियों ने कभी स्वप्न में भी चोरी कर्म्म को छोड़ कर, वैदिक कर्म्म नहीं किये हैं, देखो इस अन्धे ने कैसा धोखा जनता को दिया है, कि इस सूत्र में उदास पन्थ का विधान है, हाँ उदासी चोरों का तो विवक्ततया उल्लेख अवश्य है, कि उदासी चोरत्वप्रिये हैं ॥ अब निश्चय हुआ कि इस सूत्र में स्वर्ग या अपवर्ग न मिलने वाले चोरों का नाम उदासीन शब्द से स्मरण किया गया है, और (वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् २-२-२८ ॥ तथा (सर्वथाऽनुपपत्तेश्च २-२-३०—इन सूत्रों में धर्म्म विरुद्ध या संभव न होने से उदासी चोर ही है ॥

अब सिंहावलोकन न्याय से संन्यास का निरूपण किया जाता है ॥ इस समय बहुधा शास्त्रश्रम विकलों का कथन है कि, वेदों में नाम वा इतिहास नहीं हैं ॥ परं हम को शोक से लिखना पड़ता है कि इन मूर्खों ने जाग्रत् में तो क्या प्रत्युत् स्वप्न में भी कभी वेदों का या अन्य शास्त्राओं का दर्शन नहीं किया है, अन्यथा ऐसी रेका न करते, क्योंकि हम ने "वेदेतिहास-निर्णय मीमांसा" में १०८ इतिहासों का निरूपण किया है, जो समस्त ऋषि राज्य प्रजा सम्बन्धी हैं, क्या वेदों में जो नाम है वही सत्य माना जायेगा ? यदि हां तो खपुष्प बन्ध्यापुत्रादि भी शब्द वेदों में विद्यमान हैं ॥ तो वही आप को विद्यमानतया उपादेय

होंगे, देखो वेदों के नामों से ही समस्त संसार के नाम संस्करण किये गये हैं, कि (वेद शब्देभ्य एवादौप्रथक् संज्ञाश्च निर्ममे) इस प्रमाण से निश्चय है, कि समस्त संज्ञा वेदों में विद्यमान हैं, और लोगों में भी व्यवहार के लिये प्रयुक्त की गई हैं ॥

॥ संन्यासियों के दश नाम वैदिक हैं ॥

स्मरण रहे कि उसी संन्यास के दश नाम भी नियत किये गये हैं जो हम पूर्व वेदों से दिग्दर्शन दर्शा चुके हैं, और तिसी संन्यास के भेद भी वेदों में दशनामत्वेन निर्माण किये गये हैं, कि (परेण नाकं निहितं गुहायाम् विभ्राजते यद् यतयो विशन्ति) इस कठ के टीका में सांख्य कारिका के पृ० ३८ में बालकराम ने भी मुक्त कण्ठ से संन्यास को वैदिक मान कर, इस उदास को अवैदिक ही सिद्ध किया है कि "यद् यतयो विशन्ति इति-यतयः=यत्नशीलाः संन्यासिनो हि तत्वस्वरूपे स्थितिं कुर्वन्ति) इति—क्या अब इस अपने गुरु की आज्ञा मानोगे, या मूर्खों की गाल बिजाओगे, देखो शङ्कराचार्य्य कृत सप्त सूत्रों में दश नाम वैदिक संन्यासियों के वेद प्रतिपाद्यत्वेन दर्शाये हैं, कि (तीर्थाश्रम-वनारण्य-गिरि पर्वत सागराः-सरस्वती भारती च पुरीति दश कीर्तिताः) अर्थात्=तीर्थ आश्रम वन आरण्य, और गिरि, पर्वत, सागर, और सरस्वती भारती पुरी यही दश नाम वेद मुख से निःसृत हुये हैं, सो यहां लिखने ही उचित हैं कि इस कल्प के पूर्व भाग में सब से प्रथम मनु की दश जाया में से एक का पुत्र नाभानेदिष्ठ था सो किसी वैदिक पाठशाला में पढ़ता था, परं मनु की आज्ञा से शेष पुत्रों ने मनु की सम्पत्ति विभक्त कर ली, परं नाभानेदिष्ठ ने घर आकर पिता से अपना हिस्सा माँगा, परं घर में कुच्छ शेष न था, तब पिता ने पुत्र को (तानेते सूक्ते सष्टेऽहनि शंसय) यह सूक्त और (इदमित्थासप्ताधिका नाभानेदिष्ठो मानवो वैश्वदेवंतत्) इस सर्वानुक्रमणी के प्रमाण से (इदमित्थ) प्रतीक वाले ऋग्वेद के दशम मण्डल के ६१वें और ६२ वें सूक्त ही दिये थे, इस लिये इन सूक्तों का ऋषि नाभानेदिष्ठ लिखा गया है, यह समस्त समाचार तै० संहिता—और मैत्रायणी संहिता वा ऐत० ब्राह्मण में सर्वथा समान ही लिखा गया है, और तै० संहिता में (मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत्) ३—१—६ से और मैं० संहिता में (मनोर्वै दश जाया आसन्) १—५०८—इस से और ऐ० ब्रा० (नाभानेदिष्ठं शंसति—५—१४ इस से आरम्भ किया है, यही एक व्यक्ति इस कल्प में संन्यास का प्रवचन करती मानी गयी है, इस ने ही समुद्र-

गिरि से संन्यास दीक्षा ली थी, और अपना भी नाभानेदिष्ठगिरि धरा था, इस से निर्विवाद है, कि संन्यासीही वेदों का जीवन वा प्राण है, क्योंकि संन्यासियों ने ही वेद का प्रचार किया था, और वेद के द्रष्टा भी यही एक मात्र यति लोग ही हैं, क्योंकि गृहस्थी लोग व्यसन-व्याप्रता के ही शिकार वन रहे हैं, इन प्रवचन कर्ताओं में जो विशेषज्ञ होता था वही सब का पूज्य और वेदों का सच्चा जीवन वनता था, और शीतातपद्वन्द समस्त साहर्ष सहन करता हुआ वेदों को स्वमन में स्थान प्रदान करता था अर्थात् अपना जीवन वेदों को और वेदों का जीवन अपने को अर्पणासा संन्यासी समझता था, और सम्पूर्ण वेद-विद्याओं को समस्त समाज के संमुख प्रचार द्वारा ही उपकार करता हुआ संसार में दमकता था, और वैधर्म्मियों को सर्वदा के लिये यम का शिकार बनाता था। ऐसे संन्यासियों का होना ही वेदों का जीवन है, और यजु० ३४—११ में कि (पञ्चनद्यः सरस्वती-मपि यन्ति सस्रोतसः) स्रोत सहित पञ्चनदी नाम से तो सरस्वती को भी अर्थात् सरस्वती नाम संन्यासी को भी उपमा प्रदान को है, कि सरस्वता नामक यति वेदों का पञ्चनदी के समान ही प्रचार प्रवाह से निर्वचन कर सक्ता है, तथा (पर्वतस्य गा आजः) ऋ० ८—३—१९=पर्वत नामक संन्यासी की वेदरूपा वाणी तो साक्षात् अमृतरूपा ही है, और (अन्तरिक्षं सरस्वती निदस्यातु) ऋ० ६—६१—११। इस में तो साफ है कि सरस्वती नामक तो अन्तरिक्षस्थ नरों को भी उपदेश द्वारा रक्षा करता माना है कि वाणी का रुकाव स्वभाव सर्वदा अन्तरिक्षगा है। पुनः—ऋ० ७—९५—२ के मंत्र में (एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यतो गिरिभ्यः) गिरियों से आधीतवेद होकर सरस्वती यति पवित्र ही है, इस से ज्ञात है कि सरस्वती यति गिरियतियों से विद्या पढ़ कर लोगों में प्रथम ही दमका था। और गिरि यति स्वयं कहते हैं कि (पावका नः सरस्वती) यज्ञं दधे सरस्वती" ऋ० म० १ अ० २ सू० ३— मं० १—११—हम गिरियों को पवित्र करने वाले सरस्वती हैं, और यज्ञ का भी प्रथम सर्व जीवों में प्रचारक यही एक यति सरस्वती ही है" इस मंत्र में (यज्ञो वै विष्णुः) ऐ० संहिता के अनुसार भगवान् का ही सच्चा प्रेमी यही था। और (यविष्ठ भारतीम्) ऋ० म० १ अ० ५ सू० २२ म० १० (भारती वर्धसे गिरा) ऋ० म० २ अ० १ सू० १ मं० ११ इन मंत्रों में सब से वली और सब की वाणी का वर्धक यदि है तो केवल भारती नामक ही यति हुआ है। और (राजा वरुणो वनस्य) ऋ० म० १ तथा च (दूरं वातो वनादधि) ऋ० म० १ और (प्रियो हरिर्वनेषु सीदति) ऋ० म० १ प्रथम मन्त्र से तो राजा वरुण किसी वन नामक संन्यासी का शिष्य सिद्ध होता है, दूसरे में,

वात (अज्ञान) वनयति से दूर भागता है, और तीसरे में सर्व-भक्त-प्रिय पापनाशक हरि भगवान् विशेषरूप से वन नामक यतियों में स्थित हैं, (देवयतीनाम्) ऋ० म० १ मं० ८ (जिहीत पर्वतो गिरिः) ऋ० म० १ मं० ७ (त्वं तमिन्द्र ! पर्वतं न भोजसे) ऋ० अर्थात् पर्वत और गिरि संन्यासी तो साक्षात् देवता ही हैं, इन पर्वत वा गिरियों ने ही प्रथम असार संसार का विवेक द्वारा हान किया था, और तीसरे मन्त्र में तो स्पष्ट है कि हे इन्द्र ! यदि तुम पर्वत संन्यासी को मानादि द्वारा पूजा न करोगे तो आप की बड़ी हानी होगी, क्योंकि समस्त नरपुङ्गों को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर यज्ञों से विमुख कर देंगे, इस लिये इन की मानसिक पूजा किया कर ! भला जिस पर्वत से देवराज इन्द्र भी डरे तो उस से अनाश्रमी क्यों न डरेंगे ? (तीर्थे सिन्धूनां रथः) ऋ० म० १ मं० ८ सू० ४६ (अपामर्थे यतीनाम् ब्रह्मा भवति सारथिः) ऋ० म० १ सू० १६३ मं० ११ मुक्ति-फल-प्रद यज्ञ-फल के लिये यजमान यतियों (संन्यासियों) को ब्रह्मा (निरीक्षक) बनाये, इन मंत्रों में स्पष्ट तीर्थ संन्यासी का उल्लेख है, और (पुरुत्रारण्येषु) ऋ० म० १ सू० १६३ मं० ११ इस मंत्र में पुरुषों को अभय प्रदान करने वाले आरण्य नामक संन्यासी का विधान है, क्योंकि जङ्गलों में भूत-प्रेतादिक हिंसक प्राणियों से भय अवश्य होता है, इस लिये आरण्य नामक संन्यासी (अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः) इस योग सूत्र के अर्थ की खूब वासना भावित बना देता है, और (पुरीषाणं जिन्वतम्) ऋ० म० ६ सू० ४६ मं० ६ में पुरी नामक संन्यासी को पार्ण (ज्ञान) का ज्ञेता और अज्ञान का नाशक शल्भन किया है, और (वैश्वानराय पतये मतीनाम्) ऋ० म० ७ सू० १३ मं० १ में और (येनाऽऽयतिभ्यो भृगवे) ऋ० इन मंत्रों में तो ज्ञानरूप से अन्धतम का नाशक संन्यासी को बारंबार नमस्कार किया है, और (अपः प्रेरय: सगरस्य बुध्नात्) ऋ० इस मंत्र में श्रद्धा की जीवन शक्ति सागर नामक संन्यासी को ही निरूपण किया है, इस ऋग्वेद में जैसे संन्यासियों के दशनाम का पूरा २ विधान है, तैसे दास नामधारी राक्षसों का भी कथन किया है कि (सुदासे दस्रा) ऋ० म० १ सू० ४७ मं० ८ में सुदास शब्द का अर्थ दस्रा (हिंसक) किया है, इस लिये (यो दासं वर्णमधरं) ऋ० म० १ सू० १२ मं० ४ में दास शब्द नीच वर्ण का वाचक माना है, और (दासस्य नमुचेः शिरो) ऋ० म० ५ सू० ३० मं० ७ में दास शब्द नमुचि महाराक्षस का वाचक लिखा है, इस लिये (उच्छिष्टभोजिनो दासाः) भा० सर्व ब्राह्मणादिक वर्णों का जूठा खाने वाले दास होते हैं, संभव है कि इस अन्धे ने इन दास शब्दों को न देख कर ही अपने को

राक्षस पैशाच लिखा है कि हम सब उदासी दास (सेवक) ही हैं, देखो अन्धे की अन्धता कि सूर्य्य प्रकाश पृ० ३०में गुरुदित्ता के चार नौकर यवन थे, जिन का पूर्व हम निरूपण कर चुके हैं, इन चारों का अन्धे ने श्रीचन्द के चेले लिखा है , परं सूर्य्य प्र० पृ० ३० में इन को बित्ता के चेले मुख (प्रथम प्रधान) उदासी वेद विरोधी लिखा है, और श्रीचन्द को तो गोदड़िये के मित्र लिखा है, कि गोदड़िये मांस शराब खोरी होते हैं ।। इस प्रकार सूर्य्य प्रकाश के उत्तर के अंशुवों में और नानक प्रकाश के भी उत्तरार्ध में श्रीचन्द को खूब पोल लिखी है, जिस ने देखना हो तो इन पुस्तकों को अवश्य पढ़े, हम अश्लील समझ कर लिखना उचित नहीं मानते ।। जिस प्रकार ऋग्वेद में दशनामाङ्कित संन्यास का विधान है, तैसे यजुर्वेद में भी लिखा हैं कि, (शान्तमया गिरिः) य० अ० १६ मं० ३ इस मन्त्र में शान्तात्मा गिरि नामक यति का निरूपण किया है, (वनानां पतये नमः) य० अ० १६ मं० १८ हे वन नामक संन्यासियो ! हम सब सेवक मिल कर आप को पति (रक्षक) बनाने के लिये नमस्कार करते हैं ।। तथा (आरण्याय पतये नमः) य० अ० १६ मं० २० और (नमस्तीर्थाय च) य० अ० १६ मं० ४ इन मन्त्रों में साफ आरण्य नामक और तीर्थ नामक संन्यासियों को नमस्कार का विधान किया है, और (अश्मन्नुर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्यः) य० अ० १७ मं० १ इस मंत्र में साफ गृहस्थ जन पर्वत नामक संन्यासी से बल की याचना करते हैं कि हम को बुद्धिबल प्रदान करो ! और (गिरयश्च मे पर्वताश्च मे) य० अ० १८ मं० १६ किसी अतिमूढ़ की शंका थी कि वेदों में गिरि या पर्वत किसी व्यक्ति के वा संन्यासियों के नाम नहीं हैं, किन्तु पहाड़ के नाम हैं, सो वेद स्वयं ही श्री मुख से वर्णन कर्त्ता है कि, गिरि वा पर्वत नामक संन्यासी ही मेरा जीवन बन रहे हैं, और वेद का कथनाकूत यह है कि, पर्याय वाचक शब्दों का सह प्रयोग नही होता, क्योंकि यदि गिरि पर्वत घट कलश के समान पर्याय वाचक होते तो साथ प्रयोग एक ही मंत्र में दोनों का न होता, तेन गिरि पर्वत वा वन आरण्य कोई भी पर्याय वाचक नहीं हैं, अन्यथा साथ प्रयोग न होता, तथा (सरस्वती च मे) य० अ० १८ मं० १३ तथा (भारती विश्वतूर्तिः) य० अ० २० मं० ४३ इन मंत्रों में सरस्वती वा भारती नामक संन्यासी स्पष्ट निरूपण किये गये हैं, और (स्वाहा दीक्षायै तपसे) इस मंत्र में तो संन्यास दीक्षा के लिये और विचार दीक्षा के लिये जिज्ञासु को संन्यास सर्वथा उपादेय ही बतलाया है, और (वसवास्त्रिवृतास्तुताः) य० अ० २१ मं० २३ देखो इसमें कैसा त्रिदण्डी

संन्यासी साफ लिखा है ॥ और (पुरी तता नभः) य० अ० २५ मं० ८ इस में पुरी नामक संन्यासी को आनभस्ततः—अर्थात् आकाश के समान व्यापक माना है ॥ और सामवेद में भी दशनाम संन्यास का विधान है, कि (हरिवनेषु सीदति) सा० उ० प्र० ४ मं० २ तथा (गिरिषु क्षयं दधे) सा० उ० प्र० ५ मं० ८ इत्यादिक गिरि पुरी संन्यासियों के दशनामों का उल्लेख है, और (दासः शेवधिया—अरिः) सा० उ० प्र० ७ मं० १६ इस मंत्र में दास का अर्थ शत्रु वा सेवक या नौकर किया गया है, इस प्रमाण से भी उदासी दास चोर ही हैं, ब्राह्मण दशनाम होते हैं, कि (कर्णाटकाश्च तैलङ्गा द्राविड़ा महाराष्ट्रकाः—गुर्जराश्चेति पञ्चैव द्राविड़ा विन्ध्यदक्षिणे १ सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडा उत्कलमैथिलाः पञ्च गौडा इति ख्याता विन्ध्यस्योत्तर वासिनः २) इस लिये भी संन्यास के दशनाम स्मरण किये गये हैं, क्योंकि प्रव्रज्या में केवल ब्राह्मणों का ही अधिकार इष्टचर है, परं इन दशनामक ब्राह्मणों के द्राविड़ और गौड़ मिल कर ८४ भेद हैं, परं दश भेदों के बहिर भूत नहीं हैं, यद्यपि इन दश भेदों में केवल कर्णाटक ब्राह्मण या सारस्वत ब्राह्मण ही प्रधान और श्रेष्ठ हैं, तथापि पञ्च द्राविड़ और पञ्च गौड़ इन नामों से केवल अल्पाक्षर वा देहली दीपिका न्याय से प्रयोग किया जाता है, परं उचित है कि पण्डितों को शास्त्र दृष्टि से समालोचना द्वारा सिद्ध वस्तु का ही प्रथम प्रयोग करना चाहिये क्योंकि कर्णाटक तैलङ्ग "द्राविड़=महाराष्ट्रक, गुर्जरा, ५ और सारस्वत कान्यकुब्ज" गौड़ा—उत्कल, मैथिल, ५ इस यथा संख्या पाठ से भी नं० ३ में द्राविड़ औरनं० ३ में ही गौड़ हैं, अतः देहली दीपक न्याय की अप्रतिहत-गति है, तैसे ही साम का निर्वचन करने से "पर्वत" और ऋग् का निर्वचन करने से "पुरी" नामक भेद ही प्रधान और श्रेष्ठ हैं, क्योंकि हम सप्त सूत्रों के प्रमाण दशनाम बता चुके हैं कि बन आरण्य गिरिसागर के प्रधान पर्वत हैं और तीर्थ आश्रम सरस्वती भारती के प्रधान पुरी ही हैं, इन की विशेष समालोचना हम ने "प्रभु प्रेमी संन्यासी" के पृ० १२ से पृ० ८४ पर्य्यन्त निरूपण की है। अस्तु ब्राह्मणों के दशभेद वैदिक हैं, तैसे संन्यासियों के भी दशभेद ही हैं, और भगवान् के भी दश अवतार प्रधान हैं, तिन्हों के निर्वचन करता भी संन्यासी दश ही प्रधान हैं, यद्वा चार वेद छे अङ्ग दश ही प्रधान हैं, अत एव इन के प्रवर्तक संन्यासी भी दश भेदों से स्मरण किये गये हैं। यद्वा भगवान् और भगवान् की नवधा भक्ति के यह संन्यासी लोग दशों के दश ही प्रवचन करते हैं, यद्वा संन्यास के प्रतिपादिक ४ हज़ार मंत्रों में प्रधान दश ही विषय हैं, और इन के निर्वचन करता भी दश भेदों से

स्मरण किये गये हैं, अथवा वेदों में दश भेद ही संख्या के प्रधान हैं, अन्य शत सहस्रादिक संख्या गौण है, तैसे ही इस वेदीय संख्या के लक्ष्य भूत संन्यास के भी दश ही भेद हैं। इस लेख से वक्ष्यमाण कल्पना का भी खण्डन समझ लेना, कि शङ्कराचार्य्य जी से दश नाम संन्यास चला, यद्वा शङ्कराचार्य्य जी के तोटकादि चार शिष्यों के शिष्य दश ही प्रधान हैं, वही दशनाम के करता थे। क्योंकि जब दशनाम संन्यास के नाम वा भेद वेदों में भी प्रथम से विद्यमान हैं, तो आधुनिक कैसे हो सक्ते हैं? हां वेदोक्त दशनाम का ही प्रवचन निरुक्त आचार्य्यों ने किया था, जैसे कि (स्नायात् तत्वार्थभावेन तीर्थ-नामा स उच्यते, पुण्यपापविनिर्मुक्त एतदाश्रमलक्षणम्, आशापाशविनिर्मुक्तो वननामा स उच्यते, त्यक्त्वा सर्वमिदं विश्वमारण्यलक्षणं किल, गम्भीरोऽवालवुद्धिश्च गिरिनामा स उच्यते, सारासारं विजानाति पर्वतः परिकीर्तितः, मर्य्यादाञ्च न लंघेत सागरः परिकीर्तितः, संसारसागरेसाराऽभिज्ञो ननु सरस्वती, दुःखभारं न जानाति भारती परिकीर्तितः, परब्रह्मरतो नित्यं पुरी नामा स उच्यते, बृहच्छङ्कर दिग्विजये) इन प्रमाणों से शङ्कराचार्य्य ने संन्यास का खूब ही प्रचार दर्शाया है। और चोर डाकू वदमाशों का भारत देश से निकालने का खूब प्रयत्न किया था, इसी लिये चार मठों का भी चारों मोरचों में निर्माण किया था कि कोई वैधर्म्मी आकर उदास धर्म्म न फैलादें, इन चारों मठों में अर्थात् समुद्र के पास गोवर्धन मठ, वन और आरण्य संन्यासियों का बनाया था। और शृङ्गेरी मठ बना कर सरस्वती भारती और पुरी को नियुक्त किया था, जो द्राविड़ देश की तुङ्गभद्रा नदी के किनारे पर है, और पश्चिम देश द्वारावती में शारदा मठ बनाकर तीर्थ और आश्रम को नियुक्त किया था, और उत्तर में नरनारायणाश्रम के पास ज्योति (जोशी) मठ बना कर गिरि पर्वत सागर नामा संन्यासियों को नियुक्त किया था कि तुम यति लोग अवैदिक मत वालों को भारत देश में न आने देना, क्योंकि शङ्कराचार्य्य ने आप को धार्म्मिक नेता बना कर नियुक्त किया है। अब जो उदासी चोर अधिक संख्या में होते जाते हैं, इस में वैधर्म्मी राजा का दोष है जो उचित इन दासों को दण्ड नहीं देता। जब मठों के निरीक्षक संन्यासी मोरचे जमा कर बैठ गये तो बौद्धों ने अपने को शैव मत बता कर भारत में पुनः नास्तिकता का प्रचार गुप्त रूप से आरम्भ कर दिया था, तब ज्ञान होने पर प्रत्येक नगर में मठ बना कर जगद्-गुरु संन्यासियों को बैठा दिया था कि इन नास्तिकों का तुण्ड-मर्दन कर यमराज के अतिथि बना दो, बस इस अंश में तो उदासियों ने भी बौद्धों को ही परमगुरु-देव मान कर स्वयं वैदिक कहा कर भीतर से

जैन नास्तिक मत ही प्रचार करना इष्ट माना है, परं अब संन्यासी लोग जनता को धोखे में न आने देंगे, कि बौद्धों के चेलों से बचो नास्तिक न बन जाना, ये उदासी बड़े हज़रत हैं, क्योंकि प्रथम तो सिक्खों के चेले बने और सिक्खों को खूब धोखा दिया, अब ये संन्यासी वैदिकों के चेले बनते हैं और इन जगद्गुरु यतियों को भी वञ्चना चाहते हैं कि संन्यासी गुरुओं से भी झपटें, परं पतङ्ग स्वयं जलता है। परं अब उदासियों की महाभारतीय आशा भी हताश बन गयी है कि (हते भीष्मे तथा द्रोणे कर्णे च निधनं गते, आशाबलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्) जैन बौद्ध विरोचनादि तो वैदिक सिद्धान्त को न काट सके, परं उदासियों का धृतराष्ट्र अवश्य वैदिक सिद्धान्त का खण्डन करेगा, सो चोरों की आशा भी दुराशा ही बन गयी, क्योंकि प्रत्युत् संन्यासियों को ही गुरुत्वेन समयकृत करना पड़ा, अहा ! हत भाग्य या हत-बुद्धि नरों को क्या कुच्छ नहीं करना पड़ता ॥

सिंहावलोकनम्

नानकपूता श्रीचन्द के शाक्तिक होने में बीज (कृपा करी हम पर जग माता) रहिरास पृ० ६२ (यथा बीजं तथांकुरः) जब बाप राण्ड का उपासक है तो लड़का क्यों न होवे वामी ? बहुत पाखण्डियों के लिये भी रहिरास में क्या अच्छा लिखा है कि पृ० ६६ में (भेख दिखाये जगत को लोगन को वश कीन, अन्तकाल काती कट्यो वास नरक में लीन) देखो उदासियो ! तुम्हारा मुख काला तो पहिले ही कर रक्खा है, परं इन अपठित सिक्खों को ज्ञात न था कि यह उदासी हम को ठगते हैं, यह साधु नहीं प्रत्युत् चोरों का गरोह है, और केवल यमराज के ही अतिथि हैं। हमारे अतिथि नहीं प्रत्युत् शत्रु ही हैं। और सिद्धों की गोष्ठी में नानकदास से गोरखपूत लुहारिया ने पूछा था कि (किस कारण गृह तजियो उदासा) अर्थात् तुम ने घर छोड़ कर उदास (चोरों का अवैदिक) धर्म्म क्यों स्वीकार किया है, क्योंकि तुम तो ईश्वर के भक्त और समझदार दृष्टि आते हो, तब गुरु नानक दास ने निर्भीकता से कहा था कि (गुरुमुख खोजत भये उदासी) में पूरे गुरु संन्यासी की खोज में उदासी चोरों का भेख बनाया है कि संन्यासी गुरु स्वयं ज्ञातज्ञेय होते हैं, वह जब मिलेंगे तब मैं उदास को छोड़दूंगा। इस बात को मूर्ख भी जानते हैं कि गुरु नानक दास ने वरुणपुरी संन्यासी से संन्यास की दीक्षा ली थी, जो कि जल में दर्शन गुरु के हुए थे। हाँ एक यह भी ज्ञातव्य है कि नानक प्रकाश वा सूर्य्यप्रकाश या गोष्ठी प्रभृति सब पुस्तक

सिक्खों के पढ़ने से सिद्ध होता है कि सिक्खों की सन्तान भी उदासी नाम से कथन की गयी है, इन में जो वागी टोला था वही चोर उदासी भेखी बनते जाते हैं। एक पुरुष सरकस का खेल देखने गया जोकि एकाक्षी था, उस ने अर्ध टिकट को कहा कि हम को एक ही नेत्र से दीखता है, इस लिये हम से अर्ध दाम ही लो, तब सब ने मिल कर खूब उपहास्य किया और उस काने का टिकट माफ ही करवा दिया, तैसे गङ्गादास भी अपने को सर्वथा अन्ध जानकर शास्त्रीय पुरुषों से धिक्काररूपी टिकट को माफ कराना चाहता है. ठीक (अन्ध जाट को शास्त्र वाट) यह धन्ने जाट की उक्ति सर्वदा सर्वत्र सञ्जीवित हो रहेगी। और अथर्व वेद के गोपथ ब्राह्मण में (षत्सख्येन तेन प्रव्राजिनां लोकम्) इस में प्रव्राज्या का उल्लेख स्पष्ट है, इस को छिपाना गङ्गादास की बेईमानी स्पष्ट है, तथा (सर्वेन्वाश्रमेभ्यः प्रव्राजिनोऽतिरिच्येत्) सर्व अन्य आश्रमों से संन्यासाश्रम को ही उत्तमता प्रदान की गयी है, यह बात अवश्य है कि शूद्र-दासों का वैदिक प्रव्राज्या में अधिकार नहीं है इस लिये वैदिक प्रव्राज्या का खण्डन और स्मार्त प्रव्राज्या का मण्डन, धन्य है कलि के दूतों को, जो शूद्र होते हुए भी वैदिक यतियों से कलह करते हैं। (अभि प्रव्राज्यार्थं ब्रूयात्) शांखायन वा कौषीतकि आरण्यक अ० ४= यह पैङ्ग्या (पिङ्गी के शिष्य) का कथन है कि मुझे संन्यास की आज्ञा दो। ब्राह्मण वा आरण्यकों के इस लिये अधिक प्रमाण दिये गये हैं ।। कि विधायक होनेसे, परं मंत्र भागकी विधायकता नहीं है, ताभी हमने मूर्ख अल्पश्रुतों की रुचि को देख कर मंत्र भाग से भी संन्यास का विधान दर्शाया कि संहिता भाग में भी संन्यास ४ लक्ष मंत्रों से मंत्रित किया गया है, दैवोदानि (दैवोदासि) प्रतर्दन के प्रति देवेन्द्र का वाक्य है, कि (अरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छन्) अ० ५ मं० १ वा० २ शांखायन ब्रा० इस में अवेदान्त मुख अर्थात् ज्ञान शून्य संन्यासियों को इन्द्र भेडियों की शाला में गिराता है, कि आत्म ज्ञान शून्य हैं, क्योंकि इन मूर्खों ने केवल यज्ञों का ही छोड़ा है, और हम से भी नासिवल फरमानो का डंका वजा दिया है, कि कोई भो याज्ञ कर्म्म न करो, परं हम को हे प्रतर्दन ! इन संन्यासियों से भय आता है, सो अब मैं नामधारी संन्यासियों को खूब छानवीन करंगा और अपने पालतु जीवों के पेट खूब भरुंगा ।। जब ज्ञान शून्य यतियों से ही इन्द्र की ऐसी घोषणा है, तो ईश्वर ही जाने इन भेख दिखावों की क्या दुर्गति होगी, क्योंकि अर्थवकौथुमी में साफ लिख दिया है, कि (अनाश्रमिभ्यो हननाय मे सानुज्ञया वृकाः प्रधावन्तु) अ० १ अनु० ५ मं० ६ प्र० ३=क्या

अब भी मूर्ख अनाश्रमी किसी वैदिक आश्रम की शरणागति को प्राप्त होंगे वा इन्द्र के कुत्तों का शिकार बनेंगे, ॥ और (यथा ब्राह्मणोऽयं सत्यकामो जाबाला विप्रान्तेव दिद्धुरास तथा त्वमपि सूभूयात्) अ० ८ मं० १० अनु० २ ब्रा० शांखायन=इस मंत्र में ताण्ड विन्द ने जतूकर्ण्य से कहा था, कि तुम संन्यासी बन कर इन ब्राह्मणों को भी संन्यास की दीक्षा प्रदान अवश्य करो इस इन्द्र का पीछा छोड़ दो अपने आत्मज्ञान में लवलीन हो जाओ! इन अल्प श्रुत मूर्खों का कथन था कि वेदों (मंत्र भाग) में संन्यास नाम नहीं है, सो अब तो वेदों में भी संन्यास ४००००० लक्ष मंत्रों से लक्षित सिद्ध हो गया है, इन का कूत भी जाता रहा क्योंकि (प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहित आयान्ति तत्रापदः) इन बुद्धि भाग्य हीन उदासियों ने वेद के नाम से बचना चाहा परं बच न सके क्योंकि इन को पोल तो वेदविन् ने साफ जनता को विदितचर ही करवादी है ॥

सब उदासियों को सम वट वारा कूतज ॥

उदासियो! आप को ग्रन्थ साहिब का पाठ क्यों न अच्छा लगा? क्या आप को यह उपधि तो इष्ट नहीं कि, (कात्रां को कपूर न सुहवै धावै गन्दगी को हाथी को स्नान फिर क्षार शिर पावहीं। तांबयाँ दी वेल जो मायूष साथ पालिये, भालिये मधुरता में कटुता ही आवही १—सिमल सरेवै फल हथ नहीं लेवे मूल, अन्धा आगूथीयै सब साथ ही मुहावही। कहे कविराज सुनों निन्दक बिहुना नाम ताको वेद शास्त्र कदे मूल नहीं भावहीं २) यदि सच पूछो तो इस में इन वासी उदासियों का ही चित्राङ्कित किया गया है, ठीक है कि (मधुना सिञ्चयेन्निम्बं न निम्बो मधुरायते) इन दासों का भी सिक्खों ने मक्खन और हलुवा से पाला था, परं यह विषधर हो रहे, देखो विभिन्नता (ये प्रातः प्रव्रयन्ति) गो० ब्रा० प्र० ३ और न्यस्य बलिकृत्) पं० ७ अ० ५ ब्रा० ए० में (यतीन् सालावृकेभ्यः प्रादादरुर्मवा नवधीत्) ऐ० ब्रा० पं० ७ अ० ५ इन मंत्रों में संन्यास का मुक्त कण्ठ से निरूपण किया गया है, और (सुदासे वै यवनायते) ऐ० ब्रा० पं० ७ अ० ५ इस मंत्र का चन्द्रभाष्य के पृ० २५ में और विश्वेश्वर भाष्य पृ० २६ में उद्धृत किया है, कि उदासियों में यवनत्व व्यवहार अनिवार्य्य है, क्या इन प्रबल प्रमाणों को कोई सनयन भी नहीं देख सकते? क्योंकि मैक्स मूलर की "आरायन" से कि (बलाइण्ड क्वाईट इज इन दि वेद) गङ्गादास तो वेद में बिलकुल अन्धा ही है, क्योंकि (इफ मैन कैन मेक ए बक्स कैन

ही मेक ए ट्री ?) यदि नर वक्स बनाले तो क्या वृक्ष भी बना सकता है, जब गुरुजपाठी गङ्गादास है, तो वेदों को क्या जानेगा, किसी ने पूच्छा कि (हैव यू एवर सीन ऐन आउल) तुम ने कभी उल्लु देखा है, तो उत्तर मिला कि (आई हैव नेवर सीन ऐ सी आर ए शिप) मैं समुद्र वा जहाज़ कभी नहीं देखा, सो आप भी ऐसा न करें किन्तु शास्त्र द्वारा प्रष्टव्य विषय का ही निरूपण करें, स्मरण रहे कि (दि ला आफ गाड इज़ होली) ईश्वर कृत वेदों को सब ही पाक (शुद्ध) मानते हैं ।। अन्य अल्पश्रुतों के ग्रन्थ तो अमान्य ही हैं ।। और (आत्म संविदो यतयो गृह्यत्यक्ता: परिभवन्ति वि-) द्राह्याण गृह्य सूत्र० कौ० प० ३=यह सूत्र भी संन्यास का विधान करता है, और (यस्य यं विश्व आर्य्यो दास:) य० ३३ अ० मं ८२ इस मंत्र में दासों (नौकरों) को आर्य्य कहा है, अत: उदासी दास चोर ही हैं, क्योंकि व्याकरण के पृषोदरादि गण में अरि शब्द से (अरीनाम् समूह आर्य्य:) यद्वा (अरीणामपत्यम्-आर्य्य:) आर्य्य शब्द सिद्ध किया है, जिस का अर्थ होता कि शत्रुओं का गरोह या चोरों की संतति ही आर्य्य हैं ।। इससे सिद्ध हुआ कि दास नामधारी केवल चोर डाकू ही नहीं प्रत्युत् शत्रु भी पूरे हैं, इस लिये वर्त्तमान में भी संन्यासियों के शत्रु पूरे ही बने हुये हैं, और (कहे रविदास चमारा) इस ग्रन्थ साहित्र के पाठ से तो उदासीदास चमार ही दृष्टचर है, और (दासवंशसमुत्पन्नो जारजो हि विधीयते चौरकर्म्मरतिश्चारु: कपटवेष- धराजुट्) वे० र० अ० २ स० ५ श्लो० ११ तथा (सुदासोदस्रो दासो वा वेदत्रितये लिपिकृत्–सर्वदा दासधर्म्मी वै व्यलीके स्थितिमान् खल:) अ० २ स० ३-१३ में तो साफ वर्णशंकर को वा मिथ्या कार्य्य कर्ता को ही उदासी कहा गया है ।। और इन दोनों श्लोकों को चन्द्रभाष्य के पृ० २४ में और विश्वेश्वर भाष्य के पृ० ३० में भी उधृत किया है, और चन्द्रभाष्य के तो (यथा शिखामयूराणां जगानां मौक्तिकास्तथा–तद्वद्वेदेषु संन्यासो हार्दभावेन दर्शित: १ और उदास के लिये तो चन्द्रभाष्य में पृ० २५ (उदासोऽयं कलौ जातु सर्वशास्त्र विरोधत:, वेदैरनादृत: सर्वैस्त न्न मूढ निषेवित: २) संन्यास को तो (यथा गोप्यं परि नित्यं यथा कान्ता विभावसो:, तथा वेदेषु वै गुप्तं यति धर्म्म विशेषत: ३ उदास के लिये तो (सुसेव्यं कालिकं धर्म्मं कलि दुतैर्निषेवितं–चन्द्रभाष्ये न्युक्तञ्च वाममार्ग प्रदर्शनम् ४ (कलौ न विद्यते पापं परं धर्म्मादुदासत:–ततो न विद्यते पुण्यं परं संन्यास कर्म्मण: ५ इस चन्द्रभाष्य में किसी पक्ष का पशु न बन कर साफ कहा है, कि उदास से परे पाप नहीं, और संन्यास से परे पुण्य नहीं, भला जब चन्द्रभाष्य के कर्त्ता इन श्लोक पञ्चक में

संन्यास का आदर करते हैं, तो उस के मूर्ख चेले भले हो गालि प्रदान करें, परं हम तो उस को सच्चा निर्भय चोर उदासी मानते हैं, और (उदासीना भवन्त्येते दैव संदुषिताशया निषिद्धैश्वरणैश्चैव निन्दका विषयैषिण: ।। जायन्त आकिका जीवा दासधर्म्मं भजन्ति ये—उदासं शास्त्रतो बाह्यं शिश्नोदरपरायणा: ।। कलिजातेन जातोऽयमुदासधर्म्मो हि किमुत सेव्यते निन्दकै र्नुनं जिह्वालोल्यवशंवदै: ।। ये "वामनौका" के श्लोक चन्द्रभाष्य पृ० २० में लिखे हुये हैं ।।

चन्द्र भाष्य के कर्ता ने लिखा है कि सिक्खों का हलुआ वा सनातनियों के क्षीर अपूपादि भी वाम नौका के मद्यों के समान हम को प्रिय नहीं हैं, अस्तु इस अन्धे ने यह भी लिखा था कि श्रीचन्द्र ने संन्यास का खण्डन खूब किया है, सो इस लेख से तो श्रीचन्द्र को खूब सपेरा सिद्ध किया है, क्योंकि शिर पर टोपी गले में सेली तथा कान में मुद्रा जन्मज मानी है, ज्ञात होता है कि यवनों ने तो टोपी दी होगी और पिता ने यज्ञसूत्र और किसी नाथ ने एक मुद्रा कान दी तो दुःखित हो भाग गया होगा। भला श्रीचन्द लिखे कि (गुरमुखी बोली) और खण्डन करे वैदिक संन्यास का, कहो इस मूर्खतागर्भित बात को कौन मूर्ख मानेगा, हम को ज्ञात है कि सुलतानपुर की "बालक्रीड़ा" में लक्ष्मीचन्द्र कहे "कुपास" तो श्रीचन्द्र कहे "पकास" इस लिये लाचार होकर कह दिया कि मेरी बोली गुरुमुखी है, क्या अनपढ़ नर खण्डन करेगा या अपनी काली करतूत दर्शायेगा, हां गुरुमुखी बोली वाले को संस्कृत का पण्डित लिखना माना कालातुण्डकर पश्चम अन्यथासिद्ध पर बैठा कर व्रीड़ा के जल से स्नान करवाना है, अस्तु किसी हरनामदासु का बनाया हुआ "उदासीन मत दर्पण" अवश्य पढ़ो !!! (ये त्रिषप्ता: परियान्ति विश्वारूपाणि बिभ्रत:, वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽद्य दधातु मे) अथर्व वेद १ कॉं० प्र० सू० १ मं० १ इस मंत्र में संन्यासी दीक्षा समय मेधा (ज्ञान) की प्रार्थना प्रजापति से करता है, कि मेरे धारक पाञ्च ज्ञानेन्द्रियां वा पाञ्च कर्मेन्द्रियां और पाञ्च प्राण तथा पाञ्च महाभूत और एक मन इन त्रिषप्तपद वाच्यों को आप पुष्टि प्रदान द्वारा मुझ संन्यासी में आत्मज्ञान स्थापन करें, इस मंत्र का केवल संन्यासीय-ज्ञान (बुद्धि) वर्द्धन में ही विनियोग कौशिक सूत्रों में लिखा है कि (पूर्वस्य मेधाजननानि) २-१-कौ० सो आत्मज्ञान सम्पादन करना ही संन्यास है। और पैठिनसि ने भी अथर्व के प्रथम मंत्र को संन्यास परक ही स्मरण किया है कि (ये त्रिषप्ता इति मंत्रस्य ज्ञाने विनियोगो ज्ञानस्य च संन्यासाधीनत्वात् तस्मात् संन्यासकर्म्मणि विनियोग:) २-१-पै० सू० ३। और (महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक्) अथ० अ० १ अङ्क ४ मंत्र १ में

जैसे पर्वत नामा यति का ब्रह्मरूप पिता से वियोग नहीं होता वैसे ही कन्या पिता के घर में रहे। (वृत्रं यो जघान पतीर्न) अथ० काँ० १ अ० १ सू० ५ मंत्र ३ इस में सायण भाष्य यह है कि (अत्र यतिशब्देन वेदान्तविचारशून्या परिव्राजका विवाक्षिताः) निरुक्त में भी (यतयो नाम नियमनशीलाः संन्यासिनोऽपि) और (अरुन्मुखान् यतीन्) क्या यह प्रमाण नयनविकलों ने नहीं देखे होंगे, परं देखें कैसे (प्राप्ते कलियुगे घोरे सुदासाः पुण्यवर्जिताः, दुराचाररताः सर्वे सत्यधर्म्मपराङ्मुखाः) इस ब्रह्मण्ड पुराण के उत्तर खण्ड के पद्य को देखकर ही उपेक्षा कर दी होगी कि हम उदासी तो अधर्म्मी हैं, परं औरों को भी वामी बनायेंगे। और (साह्यामदासमार्य्यं) अथ० सू० ३२ काँ० ४ मं० १ में दासों (असुरों) को और आर्य्यों (शत्रुओं) को मन्यु की कृपा से जीतते हैं। इस मंत्र में साफ यह व्युत्पत्ति भी स्पष्ट है कि (अरीणां समुहोऽरीणामपत्यं वा आर्य्यः) दास और आर्य्य शब्द का श्रेष्ठ अर्थ करना केवल मूर्खता ही है, हाँ अभिमुखार्थ में तो श्रेष्ठ अर्थ कहीं २ मान्य भी होता है, परं विधानार्थ में तो चोर वा राक्षस ही अर्थ सर्वत्र निबन्धों में दृष्टचर है, और (ब्रह्महत्यादि पापानां निष्कृतिं यदि वाञ्छति तदेवो दासजं कर्म्म सर्वदा सूत्रवत्त्यजेत्) ब्र० पु० उ० खं० इस में उदास धर्म्म को ब्रह्महत्या का जनक लिखा है और (न मे दासो नार्य्यो महित्वा व्रतं) अ० ३ सू० ११ काँ ५ मं० ३ इस अथर्वोक्ति में कि मुझधारित व्रत को दास (वेदविरोधी) वा अन्य शत्रु आदि कोई भी नाश नहीं कर सकता, भला संन्यास का प्रतिहत भाग्व-वयव दास क्या खण्डन कर सकता है? कदापि नहीं। और (ओजो दासस्य दम्भय) अथ० काँ० ७ अ ८ मं० १ इस में दास का अर्थ शत्रु वा जार किया है कि (हे अग्ने! दासस्य=शत्रोः-ओजो-वलं दम्भय= नाशय, और (दम्भयतिः-वधकर्म्मा) या क्या अब भी कुच्छ अलीक पन्थ उदास में सन्देह है, और (विराजमाहुर्ब्राह्मणः पितरं तां नो विधेहि यतिधा सखिभ्यः) अथ० काँ० ८ मं० ७ सू० ५ इस में छे=ऋषियों ने कश्यप से प्रश्न किया था कि हम को बताओ कि विराट् ब्रह्मा का पिता है? यह बात संन्यासियों के समान शिष्यों के प्रति उपदेश प्रदान करो? और (आसीनाः खलु नरजा उदासीनाश्च वानराः सुकराश्च न्युदासीनाः सर्वे हि यान्तु त्वन्तकम्) भ० स० १६ इस में नरों के लिये तो आसीन प्रयोग आया है, तथा वानर सुकरों के लिये ही उदासीन प्रयोग किया है॥ और (उदीराणा उतासीनाः) अथ० काँ० १२ सू० १ मं० २८ सू० १ इस में भी सूकरों के लिये उतासीन प्रयोग आया है, परं इन दासों को जिस निवन्ध में उत् पूर्वक आस का प्रयोग

मिला वहां ही उदास पन्थ कल्पना कर लिया, भला जिन निबन्धों में मूर्ख चोर या बानर सूकर वा शराबी जुहारिये का वाचक उदासी शब्द आया है, प्रत्युत् सर्वत्र ही मूर्खादि का वाचक उदासी शब्द को हम दर्शा चुके हैं, भला जिस पन्थ के प्रवर्तक बानर वा मूर्ख हों वह पन्थ क्यों न विराट् रूप धारण करेगा, इस से निश्चय हुआ कि उदासी यहां नरों के लिये आया है, वहां पर केवल अधम नीच नरों के लिये प्रयुक्त हुआ है, यह बात हम खूब प्रबल प्रमाणों द्वारा दृष्टि पथ करा चुके हैं॥ यदि कहो कि दैवोदास वा मही दास प्रभृति दास शब्द वेद पढ़ों के लिये भी प्रयुक्त किये गये हैं, नौकर वा नीच मूर्खों के लिये ही नहीं ? अरे दासो ? यदि तुम्हारा संचालक सनयन होता, तो तुम ऐसी शंका पंक कलंक में परमाम्रेडित न होते, क्योंकि नि० प्र० ३ में "देवसंददाति" इति देवोद:-तस्यापत्यं दैवोद:) इस से बहुवचन प्रयोग करने पर दैवोदास वेद में असुकन्त बनता है, तैसे ही महीदास भी—महीं ददाति-इति महीद:-जसोऽसुकि जाते महीदास प्रयोग होता है, जैसे कि "देवास ब्राह्मणास वेद में होते हैं, किसी व्यक्ति के नाम नहीं हैं प्रत्युत् संतति के ही वाचक हैं, और हमारे वश को बात नहीं है क्योंकि वेद ने हम को आज्ञा दी है कि (तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरुर्ध्वा अकल्पयत्) अथर्व— काँ० १२ अ० १ सू० १ मं० ५३ अग्नि ने स्तुतियों के द्वारा इन पर्वत संन्यासियों को अवैदिक चोर उदासीनों का खण्डन करने के लिये सब से उच्च (श्रेष्ठ) बनाया है, कि तुम वैधर्म्मियों का तुण्ड मर्दन करो, और वैदिक डंका बजा दो कि चोर दासों से बचो—स्मरण रहे कि उदासियो ! तुम्हारा खण्डन कर पोल जनता को दर्शाने का ईश्वर ने वेदों द्वारा निरुक्त मंत्र में पर्वत संन्यासियों को ही अधिकार प्रदान दिया है, पतितों का काम है कि वेदों में प्रहार करना, परं पर्वतों का काम है कि इन चोरों का मुख दलित करना, क्योंकि वेदों की आज्ञा तो शिरोधार्य्य है, (अपूपवान् मांसवाँश्चरुरेह सदितु) अथर्व काँ० १८ अनु० ४ सू० ४ मं० २० इस मंत्र पर चन्द्रभाष्य अवश्य दृष्टिगत करना चाहिये कि (ममेष्टदेवतायै चरु:-आ-समन्तात्-इह वाम मार्गे-मदीये तिष्ठतु कथंभूत:- अपूपवान् तथाहि मांसवान्-चरु: स्यात्-अत्र मांसेन केवलं छागमांसं विवक्षितं, कुत: छागप्रिया हि-उदासीना: कर्म्म विकला भवन्ति) चन्द्र भाष्य पृ० २५ में वाम मार्ग का दृश्य दर्शाया है, देखो चन्द्र भाष्य का कर्त्ता निबट बुद्धि का रिपु ही है, क्योंकि यह प्रकरण पितृयाग का है, किसी मूर्खों का या वाम मत का प्रदर्शक नहीं है, यदि वेदों में भी वाम पन्थ सिद्ध करना है, तो गुरुग्राम (अमृतसर) निवासी पण्डित हरदत्त

के ही चेले बनना था, देखो इसी मंत्र पर विश्वेश्वर भाष्य=(माया:- अंसा:-विभागा:-मांसा:-ते सन्ति-अस्मिन्-इति मांसवान्-चरुः) पृ० २५ में देखो ? अकल के रिपुयो ! प्रकृति और विकृति पदार्थों के विभाग संपृक्त चरु हो यही—अर्थ सर्वत्र उपादेय किया गया है, परं चन्द्र भाष्य-कार को तो केवल छाग झटका ही दीख पड़ा ॥ देखो (यत्र ब्रह्मविदो "पतयो" यान्ति दीक्षया तपसा सह) अथर्व काँ० १६ सू० ४३ मं० १ इस में संसारदवानलपरिदग्धरुप जिज्ञासु यजमान भी उसी गति को प्राप्त होता है, जिस गति को ब्रह्मवेत्ता संन्यासी संन्यास दीक्षा द्वारा जाता है, और (यते ! इन्द्र ! भयमहे ततो नोऽभयं कृधि) अथर्व० काँ० १६ सू० १५ मं० १ संसार से दुःखित जिज्ञासु ऐश्वर्य्य सम्पन्न संन्यासियों से प्रार्थना करता है, कि हेयते ! ज्ञानविभुतियुक्त ! हम को संसाररूपी भयप्रदसिन्धु से पार करो हे गुरो ! हम को अभयप्रद मार्ग का मार्ग बताओ ! ज्ञात होता है कि इस अन्धे ने नयन विकल तुण्डस्थ कर्णों से कभी श्रवण नहीं किया कि वेदों में संन्यास है वा नहीं, परं घूकादि यदि सूर्य्याभाव को कहें तो कौन कहेगा कि "सत्यमभिहितं" तैसे गुरुमुखी बोली के घूका यदि वेदों में संन्यास को नहीं देखते तो क्या घूकों की कपाल क्रिया करने वाले पण्डित भी नहीं देखेंगे ॥ वेद माता वा पिता के समान जिज्ञासु के हितार्थ उपदेश देता है, कि तुम संन्यासी होकर मुझ ब्रह्म में जीवन प्राण और सन्तान पशु वा कीर्ति और धन अर्पण करके आत्मलोक को प्राप्त होवो !! (आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्य दत्वा व्रजत ब्रह्म लोकं) अथ-काँ० १६ सू० ७१ मं० १ वेदोंमें संन्यास का अभाव कथन करना केवल मूर्ख लालबुझक्कड़ों का ही काम है, (येनाऽऽपतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमविथ) अथर्व-काँ० ६ सू० ६ मंत्र ३ हेन्द्र ! जो ज्ञानरूपी धन सन्यासियों का वा भृगु या प्रस्कण्व को प्रदान किया है, वह आत्मरूपी गोप्य धन हम को भी प्रदान करो !! देखो—इन शतशः प्रमाणों के जागरुक होते हुए भी इस नयन विकल की कुचेष्टा कैसा यम का मान चाहती है, (दर्दुरः प्राप्तनागास्यं मक्षिकां प्राप्तु मिच्छति) बस यही समाचार दासों का भी है। (एतमेव प्रव्राजिनो) २५-३१-२ (प्रव्रजिष्यन् वारे) २-३२-३ क्या यह शतपथ के १४ प्र० के भी मं० नहीं देखे !! भला शूद्र होने से देख तो न सकते परं (श्रावयेत् चतुरो वेदाः कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः, इस के अनुसार श्रवण तो कर सकते थे, और (या न्याससवितुः सवे) तै० ब्रा० २-१ जो सवितृप्रदत्त वस्तु का त्याग करता है, वह सर्वोत्तम संन्यासी है, अब तो अन्धे का हृदय भी कांपता होगा, कि वेदों में संन्यास का

ही प्रधान निरूपण किया गया है; वेदों में संन्यास प्रधान होते भी जो अभाव कथन कर्त्ता है वह मानों बन्ध्यासुत निर्मित खपुष्पों की स्रग् स्वगुरु के गले में अवश्य डालता है ॥

अरे ! सनयन दासो ! तुम इस को पढ़कर इस अन्धे को भी अवश्य अक्षरशः पढ़कर सुना दें कि इस ग्रन्थ ने तो दासों के खून को यम का उदकायते बना दिया है, और (अहरहः परिव्राज्यते) तै० ग्रा० अ० २ अ० १ अ० ३ मं० २ क्या यह भी मंत्र नहीं देखा जो वैभव संन्यास दैनिक को कथन करता है । धिक्कार है ऐसी विद्वता को जो पद २ में मूर्खता दर्शावे, क्या इतने प्रमाण ४ लक्ष होते हुए भी संन्यास को स्मार्त लिखे तो (व्रीड़ा नयन धर्म्मिका) को ही रट्यामास बना रक्खा है, अस्तु हमारी वैदिक प्रतिज्ञा है कि संन्यास ही वैदिक है, अन्य समस्त दासों के उदास प्रभृति भेद अवैदिक ही हैं । आप का इतना खिन्नचित्त इस लिये हो रहा है कि सिक्खों ने हम को विभिन्नता से छिन्नभिन्न बना दिया है और पर्वत भी पोल खोल रहा है, अब मूर्खता की पोल अवश्य जनता के संमुख होगी ।

❀ हरिप्रबोधनी चेतावनी का कूत ❀

उदासियो ! आप भूल कर भी महाभारतीय आशा को स्मरण न करें क्योंकि (हते भीष्मे तथा कर्णे) की आशा अब दुराशामात्र ही अन्धे ने बना दी है । क्योंकि बालकराम कमलदास वा केशवानन्द प्रभृति व्यक्तियों के स्वभावार्जित लोक पदार्पण करने पर क्या यह धृतराष्ट्र यतियों का सामना करेगा ? कभी नहीं !! क्योंकि (न हि बन्ध्या विजानाति प्रसूतायां दुःखवेदनम् , तथैवं शास्त्रकर्तृणां भावमन्धो न बुध्यति) तथा (अन्ध जाट को शास्त्र वाट) यह धन्ने जाट की उक्ति कभी व्यर्थ नहीं हो सकती । ज्ञात होता है कि अब ग्रन्थ साहिब का पाठ उदासियों के गले की क्षुरमाला बन गया है, अस्तु अब विकास वाद का समय है ॥

" उदासियों की मंडली का स्वरूप ,,

(कश्चित्काणो भवेत्साधुः खल्वाटो निर्धनं कश्चित्) जब काणा ही साधु नहीं तो अन्धा कब साधु हो सकता है, क्योंकि (अन्धो नहीं साधु थावे काणों नहीं वैन भावे, डूडो ही जो हमचे गुण्डो लङ्गड़ो वेईमान को) देखो इस का दृश्य तो दासों में पूरा २ घटता है कि कोई अन्धा कोई काणा और कोई लङ्गड़ा-लूला अर्थात् गङ्गादास अन्धा है, और हरि प्रसाद दास काणा है, और भूतपूर्व संध्यादास (सर्वानन्द) डुडा है और कोई असङ्गादास वा रत्नदास आदि छिन्न मस्तक डाकू वा लङ्गड़े हैं । इन

का फोटू पूर्व हम लिख चुके हैं कि (क.वां को कपूर न) इस कवित में (सुपथं दर्शकश्चान्धः छिन्नमस्तकदण्डदः, कुणिना लिख्यते ग्रन्थः श्रुत्वा ऽकर्णः प्रमोदते) यह समस्त समाचार श्रौतमुनि चरितामृत की रचना में पाया जाता है, और इन में हठ तो इतना है कि हजारों प्रमाणों के जागरूक होते भी अपनी अकाण्ड-ताण्डव को नहीं छोड़ते, क्योंकि (ते वैखानसा: संन्यासिनोऽभवन्) तै० आ० १ प्र० १ अनु० २३ इन मंत्रों को न देखना केवल मूर्खता ही नहीं है, प्रत्युत् हठता शठता भी अधिक है, (न्यासे-इति ब्रह्मा संन्यास एवात्यरेचयत्) तै० आ० प्र० १० अनु० ६३ क्या अब भी संन्यास में संदेह है ? यदि है तो पेचकों के कथन से सूर्य्य का वा संन्यास का आप के कथन से अभाव लोक में या वेदों में हो सकता है, कभी नहीं, वास्तव से वेदों में संन्यास से अतिरिक्त किसी भी वस्तु का विधान नहीं है यह परमसिद्धान्त मूर्खों की दृष्टि में नहीं आसकता, क्योंकि इन मूर्ख स्वार्थी पेटपालुओं को तो पापी पेट ने ही ग्रथित कर लिया है, परं ईश्वर वड़ा दयालु तथा कृपालु है वह इन दासों की असुरबुद्धियों की वातावरणता को अवश्य नाश करके सुमति प्रदान करेगा, (अथादित्यव्रते वयं तवानागसोऽदितये स्याम) सामवेदीय आ० संहिता १ म० खं० १ मं० ४ हे वरुण ! हम अत्र अपराधशून्य खण्डन-विकल शुद्ध आदित्य व्रत नामक संन्यास को सम्पादन करें आप का महतीकृपा के पात्र यति वनें। (यतीनां ऋग्वैमाता साम पिता प्रजापतिः स्वरः) साम दैवत० ब्रा० खं० १ मं० २३ में इस मंत्र में त्यक्त नश्वर माता पिता संन्यासी का गुप्त नियत व्रत का निरूपण किया है कि ईश्वर की स्तुति ही माता है, और ईश्वर का गायन ही पिता है, और जीवन तो संन्यासी का स्वयं प्रजापति ही है। और (पतिः संमार्गगो दृष्ट्वा) षट् विंश० ब्रा० इस में भी संन्यासी के दर्शन से स्वप्न विज्ञान दर्शाया है, और (द्वे अक्षरे उदासं गायेत्) वा (या षष्ठी तामुदासमिव गायेत्) ष० ब्रा० सा० प्र० २ खं० २ में साफ कह दिया है कि उदास शब्द महाभ्रष्ट सँस्कार शून्य का वाचक ही है, सो पूर्व खूब निरूपण हो चुका है, निश्चय हुआ कि धर्म्म कर्म्म शून्य नरों का नाम उदासी धरा गया है। और विधि में भी संन्यास का ही आदर किया गया है कि (यदि मृत्युतो हि परं शान्तमनामयं शाश्वतं पदमिच्छुरसि तद्धि संन्यासी भव) पैङ्गी रहस्य ब्रा० २-११-३ और (एके यतीन्) प्र० १ काँ० सू० ५ तथा (संन्यास एव सर्वेषाम्) भाल्लवी श्रु० २-५-४ ये समस्त प्रमाण दिग्दर्शनमात्र दिये गये हैं, विशेष रूप से तो हमारी (यतिप्रियो माधवः) पुस्तक में हम ने दिये हैं।

इस प्रथम भाग में केवल संन्यास को वैदिक और अन्योन्य उदासादि भेदों को अवैदिक वा चोर डाकुओं के वाचक वा संचालक सिद्ध किया है।

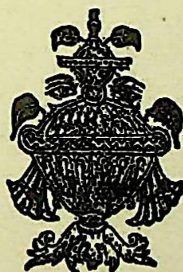
पाठकों से निवेदन है कि इस ग्रन्थ को आद्योपान्त से विचार कर जो किसी भी प्रकार की त्रुटि दृष्टिगत होवे तो कृपया हम को सूचना से कृतार्थ करें।

❀ निवेदनम् ❀

॥ श्री लक्ष्मीकमलेशपादयुगले ग्रन्थं न्यधात्पर्वतः ॥

——इति——

श्रौमुनिचरितामृत-ध्वान्तदिवाकर प्रथम भाग ॥



CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri